असली प्राचीन
वण संहित
धिपति रावण के रहस्य-चमत्कार भरे जीवनवृत्त के साथ ह
शिवोपासना व विभिन्न तंत्र साधनाओं की जानकारी

246

रावणसंहिता

[रावण जीवन चरित, रावण का तंत्र ज्ञान, आयुर्वेद ज्ञान, ज्योतिष ज्ञान एवं उनकी शिवभक्ति आदि विषयों से सम्बन्धित अनुपम एवं संग्रहणीय ग्रन्थ]

लेखक

आचार्य पं० शिवकान्त झा

ज्यौतिषरत्न, वेदविशारद

प्रकाशक—

श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार

कचौड़ीगली, वाराणसी २२१००१

प्रकाशक—
श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार
कचौड़ीगली, वाराणसी
दूरभाष : २३९२५४३
२३९२४७१

लेखक—
आचार्य पं० शिवकान्त झा

मुद्रक—
भारत प्रेस, वाराणसी

दो शब्द

'जिज्ञासा, प्राणी के विज्ञानात्मक-उत्कर्ष की आधारशिला है'', इस तथ्य को प्राय: सभी मानते व जानते हैं। यह भी जानते हैं कि निसर्गत: जिज्ञासु प्राणी अपनी चारों ओर घटित होने वाली घटनाओं के प्रति भी सर्वदा संवेदनशील रहने के आदी रहे हैं। इस आधार पर यह सोचना अनुचित नहीं ही है कि आदि काल से ही मनुष्य खगोलीय घटनाओं के प्रति भी स्वभावत: आकृष्ट होता रहा है। चूँकि आज भी जब लोग रात्रि के समय आकाश की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो उन्हें भव्य, चित्ताकर्षक एवं चमत्कारिक दृश्य स्वत: अपनी ओर आकृष्ट कर, कुछ विशेष सोचने को बाध्य कर देती हैं। निश्चय ही वे आकाशीय चमत्कारिक दृश्य लोगों को आह्लादित एवं आनन्दित करने वाली तो होती ही हैं; आश्चर्योत्पादक व डरावने अनुभव भी प्रदान करती हैं।

जिस प्रकार आकाश में चमकते अनन्त ताराओं को देखकर कभी तो आनन्दानुभूति होती है, कभी ग्रहण, उल्कापात, धूमकेतुओं आदि को देख लोग विस्मित व भयभीत भी हो जाते हैं। उसी प्रकार यह सोचना कथमपि अनुचित नहीं है कि सृष्टि के प्रारम्भिक दिनों में लोग उपरोक्त प्रकार की चमत्कारिक घटनाओं या दृश्यों से निश्चय ही अत्यधिक विस्मित व भयभीत ही होते रहे होंगे, जिन्हें कभी लोगों द्वारा परमेश्वर का कोप भी समझा गया होगा। फिर श्नै:-श्नै: उनके रहस्यों को उद्‌धाटित करने का सार्थक प्रयत्न भी किया गया होगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ रावणसंहिता के प्रवर्त्तक लंकेश्वर दशानन रावण के प्रसङ्ग में देवताओं से भगवान् श्री विष्णु का यह कहना कि वे अभी उसे युद्ध में परास्त नहीं कर सकते, रावण को प्राप्त दिव्य शक्तियों की ओर ही संकेत करता है। यह अजेयता प्रजापति ब्रह्मा से प्राप्त वर के कारण ही थी। इसे प्राप्त करने के लिए रावण ने घोर तपस्या की थी। परन्तु प्राकृतिक कुछ विलक्षणता का परिणाम ही सही मनुष्यों और वानरों की उपेक्षा का फल पराजय के रूप में उसके सामने आया। लेकिन यह क्या कम महत्त्वपूर्ण है कि लंकेश को पराजित करने के लिए निराकार को साकार रूप लेना पड़ा। उनके युद्ध की चर्चा करते समय किसी ने सच ही कहा है—वैसा कोई युद्ध न कभी हुआ और न कभी होगा।

रावण ने अपने अभियान को पूरा करने के लिए शस्त्र और शास्त्र दोनों साधनों को अपनाया। वह तंत्रशास्त्र का परम ज्ञाता था, उसने औषध ज्ञान को स्वयं जांचा-परखा और फिर प्रयोग किया था, वह एक अच्छा दैवज्ञ भी था। इस ग्रन्थ

में उसके इन्हीं विविध रूपों पर प्राप्त सामग्रियों की सहायता से प्रकाश डाला गया है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि 'रावण संहिता' नाम का कोई भी ग्रंथ मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। किसी अंश में सही हो सकता है, परन्तु सम्पूर्णता से अलभ्य भी नहीं कहा जा सकता है।

पौराणिक और ज्योतिषीय गणना के आधार पर रावण की मृत्यु को लगभग नौ लाख वर्ष हो चुके हैं और इतने लंबे समय तक किसी ग्रंथ का मूल रूप में रह पाना संभव नहीं है। अर्थात् समय-समय पर इसमें काफी कुछ जुड़ा ही है। फिर भी प्रस्तुत ग्रंथ में उसकी उपलब्ध मौलिकता को बनाए रखते हुए ही कुछ ऐसा प्रयास किया गया है कि इसमें कुछ इस प्रकार की जानकारी और उपयोगी सामग्री जोड़ी जाए जिससे इस ग्रन्थ की मूल विषय सामग्री की जटिलता को कम कर सके तथा उसे अधिक महत्त्वशाली और उपयोगी भी बनाने में सहायक हो सके।

विश्वासपूर्वक यह कहा जा सकता है कि यह 'रावणसंहिता' ग्रंथ प्राचीन साहित्य में रूचि रखने वाले पाठकों को महाबली व शास्त्र मर्मज्ञ रावण के जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं की जानकारी देने में सक्षम हो सकेगा।

अन्त में यह कि ग्रन्थ प्रलेखनादि व प्रूफादिशोधन के समय जिन महानुभावों का मुझे सहयोग प्राप्त हुआ और जिनके ग्रन्थ या पाण्डुलिपियों से सहयोग मिला, उन लोगों का हृदय से आभार व्यक्त करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। विशेषकर प्रकाशक महोदय की मैं मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए उनकी चिरायु की कामना करता हूँ, जिनके सत्प्रयास से ही यह ग्रन्थ आप विज्ञजनों की सेवा में प्रस्तुत हो सका है।

वैसे मैंने ग्रन्थ के प्रूफादि शोधन करने में निश्चय ही प्रमाद रहित प्रयास किया है। फिर भी यदि कहीं अशुद्धि रह गई हो, तो गलती करना मानवस्वभाव मान कर विद्वान् पाठक उसे सुधार कर पढ़ेंगे और सूचित भी करेंगे, तो बड़ी कृपा होगी।

अक्षय सप्तमी २०६६ **शिवकान्त झा**

वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

[पञ्चम परिच्छेद]

सदाशिव उपासना ५२५-५६८

❑❑❑

॥श्री:॥

रावणसंहिता

प्रथम परिच्छेद

रावण जीवन वृत्तान्त

भगवान् विष्णु से खिन्न शुक्राचार्य द्वारा मेघनाद को शिवयज्ञ के लिये उत्साहित करते हुए कल्पान्तर की घटित रावण की उत्पत्ति, उसकी तपश्चर्या आदि के साथ राम-रावण युद्ध आदि घटनाओं की कथा जैसा कहा गया है, वैसी ही कथा के आधार पर यहाँ रावण के जीवन वृत्तान्त को प्रस्तुत किया जा रहा है—

राक्षसों का वध कर जब श्रीराम ने राज्य ग्रहण किया, तब समस्त मुनिगण राम-लक्ष्मण के बल-पराक्रम की प्रशंसा करने को अयोध्या में पधारे। पूर्व दिशा के निवासी कौशिक, यकृत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथि के पुत्र कण्ड्व, दक्षिण के निवासी स्वस्त्यात्रेय, नमुचि, अगस्त्य, सुमुख और विमुख, पश्चिम दिशा के आश्रयी नृषंगु, कवषी, धौम्य और सशिष्य कौषेय तथा उत्तर दिशा के आश्रयी—वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सात ऋषि आये।

समस्त ऋषि रघुनाथजी के राजभवन पर पहुँच कर ड्योढ़ी पर खड़े हो गये। वे सभी अग्नि के समान तेजस्वी थे। द्वारपालों ने इन्हें सादर बैठाया। तब वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता, अनेक शास्त्रों में निष्णात, मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा अगस्त्यजी द्वारपालों से बोले—'दशरथनन्दन श्रीराम से जाकर हम मुनियों के आगमन की सूचना दो। द्वारपाल तत्क्षण ही रामचन्द्र के पास गया और ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्य आदि के पधारने का समाचार सुनाया।

महर्षियों का आगमन सुनकर श्रीराम ने कहा—सबकों यहाँ यथा सुख से ले आओ। फिर तो वे सब ऋषिश्रेष्ठ राम के पास पहुँचे। श्रीरामचन्द्र हाथ जोड़ उठ खड़े हुए। सबका अर्घ्य, पाद्यार्घ्य से पूजन किया और बड़े आदर से सबको एक-एक गौ दान दिया।

तत्पश्चात् सबको प्रणाम करके शुद्ध भाव से उन्हें सुवर्ण के आसन पर बैठाया, जिस पर कुशासन और मृगचर्म बिछे थे। राम ने उन सबकी कुशल पछी। तब उन वेदवेत्ता महर्षियों ने कहा—हे रघुनन्दन! हे महाबाहो! आपके कुशल से हम सभी कुशलपूर्वक हैं।

आपने सब लोकों को रुलाने वाले रावण का वध किया, यह सौभाग्य की बात है। हे राम! आपके लिए पुत्र, पौत्रवान् रावण का नाश करना कोई बड़ी बात न थी। नि:सन्देह आप त्रैलोक्य विजयी हैं। राक्षसेन्द्र रावण का वध कर आपको सीता सहित विजयी देखकर हम अपना सौभाग्य समझते हैं।

धर्मात्मन् लक्ष्मण आपके ऐसे हितकारी भ्राता हैं कि, माताओं और बन्धुओं सहित हम आपको सकुशल देख रहे हैं। यह तो दैवात् ही था कि आपने प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष, महोदर और अकम्पन आदि राक्षसों को मारा। अन्यथा ये सब तो बड़े ही दुर्धर्ष थे। कुम्भकर्ण तो ऐसा था कि जिसके समान विशालकाय भूमण्डल में कोई था ही नहीं।

दैवात् ही आपने उसे भी मार डाला। त्रिशिरा, देवान्तक, नरान्तक भी ऐसे ही थे, पर उन्हें भी आपने मार डाला। राक्षसेन्द्र रावण तो अवश्य ही था। उससे द्वन्द्व युद्ध कर आपने विजय प्राप्त की—यह भी बड़ा आनन्द हुआ। परन्तु हे वीर! रावण का पराभव उतना अशक्य नहीं था जितना इन्द्रजीत का। युद्ध में उसे मार डालना—यह तो बड़े हर्ष की बात है, क्योंकि वह मायायुद्ध करता था। उसका वध सुनकर हम लोग बड़े आश्चर्य में पड़ गये।

परन्तु हमें तो आपके जय की इच्छा थी। उससे भी आपने विजय-लाभ किया, यह हमारा सौभाग्य है। क्योंकि उसे कोई मार नहीं सकता था। आपने हमें अभय दान दिया। भवितात्मा मुनियों के इन वचनों को सुनकर राम ने भी आश्चर्यचकित होकर हाथ जोड़ लिया और पूछा कि, हे भगवन् ! महाबली रावण और कुम्भकर्ण को छोड़कर आप इन्द्रजीत की प्रशंसा क्यों कर रहे हैं?

यह रावण से बढ़ कर क्यों हुआ? अतिकाय त्रिशिरा आदि भी तो ऐसे ही दुर्धर्ष थे? इन्द्रजीत का प्रभाव, बल और पराक्रम कैसा था? उसने इन्द्र को कैसे जीता था और वह कैसे प्राप्त हुआ था? पुत्र से बलि पिता क्यों नहीं था? युद्ध में वह अपने पिता से अधिक पराक्रमी कैसे हुआ? मेरा यह निवेदन है कि मुझसे यह कथन कीजिये।

विश्रवा की उत्पत्ति प्रसङ्ग वर्णन

महात्मा राघव के इस वचन को सुनकर महातेजस्वी कुम्भयोनि अगस्त्यजी ने कहा—हे राम! सुनिये, इन्द्रजीत महत् तेजस्वी और बलवान् था जिससे उसका कोई शत्रु उसे मार नहीं सकता था, वह अपने शत्रु का वध करके ही रहता था। हे राघव! इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें पहले रावण का जन्म और उसकी वर-प्राप्ति का वर्णन करता हूँ।

पूर्व सत्युग में ब्रह्मा के एक पुत्र पुलस्त्य नामक थे। जिनके तप का प्रभाव ब्रह्माजी के ही समान था। तब एक तो उनका ऐसा तप दूसरे विमल गुणवान् भी थे। इससे ये सभी के मित्र बन गये। तप करने की इच्छा से वे मुनिश्रेष्ठ मेरुपर्वत के समीप तृणबिन्दु के आश्रम में जाकर तप करने लगे। तब उनको तप:स्वाध्याय में रत देख, वेदमंत्र श्रवण और विहार की इच्छा से बहुत-सी कन्याएँ वहाँ जाने लगीं।

उनमें अप्सराएँ भी रहती और ये सब ऋषियों, नागों और राजर्षियों की कन्याएँ थीं। इनके कारण तपस्वी पुलस्त्य के तप में विघ्न पड़ने लगा। इससे एक दिन पुलस्त्य जी ने कह दिया कि अब कल से जो कन्या यहाँ मुझे दिखाई पड़ेगी वह गर्भवती हो जायेगी। इस ब्रह्मशाप के भय से दूसरे दिन कन्याएँ वहाँ नहीं गयीं। परन्तु उनमें राजर्षि तृणबिन्दु की कन्या ने नहीं सुना था, इसलिए वह दूसरे दिन पुलस्त्यजी के आश्रम में चली गई और स्वच्छन्दता से विचरने लगी।

परन्तु उसने अन्य कन्याओं को वहाँ नहीं देखा। इससे उसे कुछ आश्चर्य हुआ। फिर भी वह राजर्षिकन्या वेद ध्वनि सुनने की इच्छा से मुनि का दर्शन करने चली गयी। किन्तु जैसे ही उन तेजस्वी मुनि को देखा, वैसे ही उसका शरीर पीला पड़ गया और वह गर्भवती हो गई। उसे अपना शरीर देखकर बड़ी व्यग्रता हुई और वह भागकर अपने पिता के आश्रम में चली आयी। यहाँ पिता ने देखते ही उससे जो समाचार पूछा तो उसने कहा—और तो कुछ नहीं।

आज पुलस्त्य मुनि के आश्रम में जाते ही मेरे अंगों में यह परिवर्तन अनायास हो आया है। मुनि ने नेत्र बन्द कर देखा तो उन्हें सबकुछ ज्ञात हो गया। वे उस कन्या को साथ ले पुलस्त्य मुनि के आश्रम पर आये और उनसे प्रार्थनापूर्वक उसे अपनी सेवकिनी बना लेने की प्रार्थना की। ब्राह्मण श्रेष्ठ पुलस्त्य जी धार्मिक राजर्षि तृणबिन्दु के उन वचनों को सुन उस कन्या को 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर अंगीकार किया।

कन्या को पुलस्त्य जी को सौंप राजा तृणबिन्दु अपने आश्रम में लौट आये। वह राजतनया भी अपने गुणों से पति को सन्तुष्ट कर वहाँ रहने लगी। तब एक दिन उसके शील-स्वभाव से सन्तुष्ट हो मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजी उससे बोले कि 'हे सुश्रोणि! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिए हे देवि! आज मैं अपने ही तुल्य एक ऐसा पुत्र देता हूँ कि जो उत्तम वंशों का वर्द्धक होगा और पौलस्त्य नाम से प्रसिद्ध होगा।

परन्तु तुमने मेरी ध्वनि सुनकर गर्भ धारण किया है जिससे उसका नाम विश्रवा होगा। ऐसा वर पाकर वह देवी प्रसन्न हुई। फिर तो कुछ ही समय पश्चात् त्रिलोक विख्यात यशोधर्म समन्वित विश्रवा नामक पुत्र को प्रसव किया। यह विश्रवा भी वेदज्ञ मुनि व्रतचारी तथा अपने पिता के समान तपस्वी हुए।

वैश्रवण कुबेर की कथा

अल्पकाल में ही पुलस्त्य-पुत्र मुनिश्रेष्ठ विश्रवा अपने पिता के ही समान तप करने लगे। वे सत्यवादी, शीलवान्, जितेन्द्रिय, स्वाध्याय निरत, पवित्र, भोगों में अनासक्त और सर्वदा धर्म तत्पर रहा करते थे। जब विश्रवा के आचरण को देखकर महामुनि भरद्वाज ने अपनी देवाङ्गना तुल्य सुन्दरी कन्या का उनसे विवाह कर दिया।

फिर सन्तानेच्छुक उस कन्या से धर्मात्मामुनि विश्रवा ने एक ऐसा पुत्र उत्पन्न किया जो ब्राह्मणोचित समस्त गुणो से युक्त परम अद्भुत बलवान् था। उसके जन्म से पितामह पुलस्त्यजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने पौत्र में कल्याणकारिणी बुद्धि देखकर कहा कि यह तो धनाध्यक्ष होगा। फिर तो उन्होंने ही देवर्षियों सहित उसका नामकरण किया और कहा कि 'यह बालक विश्रवा से उत्पन्न हुआ है और वैसा ही है भी।

अत: इसका नाम वैश्रवण होगा। फिर तो उस महातपोवन में रहते हुए वह वैश्रवण भी बड़े तेजस्वी हुए। उन्होंने सोचा कि, धर्म की ही परमगति है। अत: मैं भी धर्माचरण करूँगा। उन्होंने कठिन व्रत के साथ हजारों वर्ष के घोर तप किए, जिसमें वे कभी जल पीकर, कभी वायु पान कर और कभी निराहार ही रह जाते थे।

इस प्रकार उन्होंने एक हजार वर्ष, एक वर्ष की भाँति व्यतीत कर दिये। तब तो ब्रह्माजी उनके इस तप को देखकर प्रसन्न हो गए और इन्द्रादिक देवताओं को साथ ले उन्हें वर देने के लिए उनके आश्रम पर पधारे और बोले—हे सुव्रत! हे वत्स! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ, वर माँगो।

तब अपने समक्ष ब्रह्माजी को उपस्थित देख वैश्रवण ने कहा—भगवन् ! मेरी इच्छा है के मैं लोकपाल बनूँ और समस्त धन मेरे पास रहे। वैश्रवण की यह बात सुनकर ब्रह्माजी को और भी प्रसन्नता हुयी और उन्होंने 'तथास्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार की तथा वैश्रवण से फिर बोले—हे वत्स! मैं चौथा लोकपाल रचने ही वाला था, अब तुम्हीं उस पद को स्वीकार करो। जाओ अपार धन के स्वामी बनो। इन्द्र, वरुण और यम के साथ तुम्हारा चौथा स्थान होगा।

यह सूर्य के समान तेजस्वी पुष्पक विमान है, इसे तुम अपनी सवारी के लिए लो और आज ही से देवताओं की समानता प्राप्त करो। अब मैं अपने लोक को जाता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये। ब्रह्मादि देवताओं के चले जाने पर धनेश वैश्रवणजी ने हाथ जोड़कर अपने पिता से कहा—'भगवन् ! मैंने पितामह ब्रह्माजी से अभीष्ट वरदान तो प्राप्त किया है, किन्तु उन्होंने मेरे रहने का कोई

स्थान नहीं बताया है। अत: अब आप ही मेरे लिए किसी ऐसे निवास स्थान का विचार कीजिये, जहाँ रहने से किसी भी प्राणी को कष्ट न हो?' पुत्र के इस प्रकार कहने पर मुनि श्रेष्ठ विश्रवा बोले—धर्मज्ञ! सुनो। दक्षिण समुद्र के तट पर एक त्रिकूट नामक पर्वत है, जिसके शिखर पर एक विशाल पुरी है, जिसका नाम लंका है।

विश्वकर्मा ने उसे राक्षसों के लिये बनाया था। वह अमरावती के ही समान रमणीक है। अत: तुम लंका में ही निवास करो। उसके चतुर्दिक् चौड़ी खाई खुदी है और वहयन्त्रों तथा शस्त्रों से परिपूर्ण है। वह लंकापुरी रमणीय है। सुवर्ण और वैदूर्य मणि के उसके द्वार हैं। पहले उसमें राक्षस रहा करते थे। किन्तु अब विष्णु के भय से वे वहाँ से भागकर पृथ्वी के नीचे रसातल में जा बसे हैं। तुम वहाँ जामकर सुख से रहो।

वहाँ तुम्हें या और किसी को भी कोई कष्ट न होगा। तब अपने पिता विश्रवा मुनि के ऐसा कहने पर धर्मात्मा पुत्र वैश्रवण अब राक्षस की चारों ओर समुद्र से घिरी हुई लंका में प्रसन्नतापूर्वक निवास करने लगे। देवता और गन्धर्व उनका यशोगान करने लगे। उनका हृदय बड़ा विनीत था। धर्मात्मा धनेश्वर वैश्रवण पुष्पक द्वारा समय-समय पर अपने माता-पिता के समीप प्राय: आते-जाते रहते थे।

राक्षसों का पूर्व इतिहास तथा उन्हें महादेव-पार्वती का वरदान

अगस्त्यजी के कहे हुए इस वृत्तान्त को सुनकर श्रीराम विस्मित हो गये। उन्होंने बारम्बार शिर कम्पितकर अगस्त्यजी की ओर देखते हुए पूछा—हे भगवन् ! आपसे यह सुनकर कि लंका में पहले ही से राक्षस रहते थे' मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्या वे राक्षस रावण, कुम्भकर्ण आदि से भी बढ़कर बली थे? हे ब्रह्मन् ! उनके मूल पूर्वज कौन थे और उनका क्या नाम था। विष्णु से उनका क्या बैर था कि उन्होंने उन्हें मार भगाया?

तब राम के ऐसा पूछने पर अगस्त्यजी बोले—हे राम! ब्रह्माजी ने पहले जल की सृष्टि की और उसकी रक्षार्थ अनेक प्राणियों को उन्होंने उत्पन्न किया। उनमें हेति और प्रहेति नाम के दो राक्षस थे। वे दोनों भ्राता मधु-कैटभ के समान ही वीर थे। उनमें प्रहित बड़ा धार्मिक था, जो तपोवन में जाकर तप करने लगा और हेति ने विवाह के लिए बड़ा यत्न किया। उस समय काल की एक बहन थी जिसका नाम 'भया' था। अभी वह कुमारी ही थी कि उसका रूप अति भयंकर हो गया। हेति ने उसी भया के साथ विवाह किया। उससे एक पुत्र हुआ जिसका नाम विद्युत्केश था।

उसका विवाह संध्या की पुत्री से हुआ, जिसका नाम सालकटङ्कटा था। उसे पाकर निशाचर विद्युत्केश बड़ा प्रसन्न हुआ और सुख से रहने लगा। कुछ काल पश्चात्

उस संध्या पुत्री ने विद्युत्केश से गर्भ धारण किया और मन्दराचल पर जाकर वहाँ एक पुत्र प्रसव किया और उस नवजात शिशु को वहीं त्याग फिर विद्युत्केश के पास चली आयी। इधर उसका वह त्यागा हुआ पुत्र मेघ की भाँति शब्द करने लगा। फिर मुँह में मुट्ठी डालकर धीरे-धीरे रोने लगा। उसी समय वृषभारूढ़ शिव-पार्वती आकाश मार्ग से उधर होकर कहीं जा रहे थे।

उन्होंने वहाँ उस बालक के रोने का शब्द सुना। जब निकट जाकर देखा तो पार्वतीजी को बड़ी दया आई। उन्होंने उनके कहने से उस राक्षस-पुत्र का वय उसकी माता के समान कर दिया और उसे अमरत्व भी प्रदान कर दिया। महादेवजी के लिए ऐसा करना कोई बड़ी बात नहीं थी। क्योंकि वे अक्षर और अविनाशी हैं। महादेवजी ने पार्वतीजी को प्रसन्न करने के लिए एक पुर के समान एक विमान भी दे दिया और हे नृपात्मज! पार्वतीजी ने राक्षसियों को यह भी वर दे दिया कि 'राक्षसियाँ गर्भ धारण करते ही शिशु उत्पन्न करें और वह तत्क्षण माता की आयु का हो जाया करें।

हे राम! फिर तो वह विद्युत्केश का पुत्र सुकेश के नाम से प्रसिद्ध हुआ और महादेवजी के वरदान से वह बड़ा अभिमानी हो गया। अब आकाशचारी यान (विमान) और लक्ष्मी को प्राप्त कर वह सर्वत्र विचरण करने लगा।

सुकेश का वंश-विस्तार

तदनन्तर सुकेश को वरदान प्राप्त तथा धार्मिक देखकर विश्वावसु के समान तेजस्वी ग्रामणी नामक गन्धर्व ने अपनी 'देववती' रूप यौवनशालिनी कन्या, जो दूसरी लक्ष्मी के ही समान तीनों लोकों में प्रसिद्ध थी—उसे दे दी। उसमें सुकेश से अग्नि के समान शरीरधारी तीन पुत्र उत्पन्न हुए। बलवानों में श्रेष्ठ उन तीनों के क्रमशः ये नाम थे।

माल्यवान्, सुमाली और माली। सुकेश के ये तीनों पुत्र तीन लोकों के समान, तीनों अग्नियों के समान, तीनों वेदों के समान अथवा वात, पित्त, कफ के समान उग्र और भयङ्कर थे। तेजस्वी तो ऐसे थे कि शीघ्र ही बढ़कर युवा हो गये। फिर वे तीनों मेरु पर्वत पर जाकर कठोर नियमों द्वारा सब प्राणियों को भयोत्पादक तप करने लगे। उनके घोर तप से देवताओं और मनुष्यों सहित त्रैलोक्य संतप्त हो उठा। तब तो अपने विमान पर बैठकर ब्रह्माजी उन्हें वर देने आये। कहा, वर माँगो।

इस पर वे राक्षस वृक्षों की तरह थर-थर काँपते हुए हाथ जोड़कर बोले—हे देव! यदि आप हमें वर देना चाहते हैं तो हम आपसे यही माँगते हैं कि हममें परस्पर प्रीति बनी रहे और हमें कोई जीत न पावे। हम अपने शत्रुओं के संहारक हों और अजर-अमर हों। ब्राह्माजी ने कहा—तथास्तु। तुम लोग ऐसा ही होओ, सुकेश

के पुत्रों को ऐसा वर दे, ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये। हे राम! अब वे राक्षस वरदान पाकर अत्यन्त निर्भय हो देवताओं और असुरों को सताने लगे।

देवता, महर्षि और चारण अनार्यों की भाँति अपना रक्षक ढूँढ़ने लगे। फिर उन्हें कोई रक्षक न मिला। तब वे शिल्पियों में श्रेष्ठ विश्वकर्मा के पास गए और कहा कि देवताओं की इच्छानुसार आप ही उनके गृह-निर्माणकर्त्ता हैं। अत: हम लोगों के लिए भी किसी उच्चस्थान पर एक ऐसा भवन दीजिए जो शिव-भवन के समान बड़ा विस्तृत और ऊँचा हो। तब उन महाबलवान् राक्षसों के वचन सुनकर विश्वकर्मा ने उन्हें वास करने के लिए इन्द्र के समान स्थान बतलाते हुए कहा कि—'दक्षिण समुद्र के तट पर सुवेल पर्वत के समीप ही एक त्रिकूट नाम का पर्वत है, जिसके मध्य का शिखर बड़ा ही उन्नत मेघ के सदृश दीख पड़ता है, जिसके ऊपर पक्षी भी नहीं पहुँच सकते।

उसके ऊपर तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी एक नगरी बनी हुई है, जिसका नाम लंका है। उसकी दीवारें सोने की हैं और सुवर्ण तोरण से भूषित फाटक है। इस लंकापुरी को मैंने इन्द्र की आज्ञा से बनाया था। तुम लोग उसी में जाकर रहो। हे शत्रुओं के संहारक राक्षसों! जब तुम वहाँ बहुत से राक्षसों सहित बस जाओगे, तब शत्रुओं से दुर्धर्ष हो जाओगे। विश्वकर्मा के इन वचनों को सुनकर वे राक्षस अपने साथ सहस्त्रों सेवकों को लेकर उस नगरी में जा बसे। लंका के स्वर्णभूषित गृहों में बस कर वे बड़े हर्षित हुए।

हे राघव! इसी समय स्वेच्छया एक गन्धर्वी उत्पन्न हुई जिसका नाम नर्मदा था। उसकी तीन पुत्रियाँ थी, जो ह्री, श्री और कीर्ति के समान ही द्युतिमती थीं। उसेन अपनी तीनों पुत्रियों को क्रमश: उन तीनों राक्षसों को दे दीं। उन्होंने उनसे उत्तरा, फाल्गुनी नक्षत्र में विवाह किया। उनसे माल्यवान् ने अपनी सौन्दर्यवती सुन्दरी नामक पत्नी से वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त ये सात पुत्र उत्पन्न किये। साथ ही उसने 'अनला' नामक एक सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न की। फिर सुमाली की भार्या केतुमती, जो पूर्णिमा की चन्द्रमा के सामन सुन्दरी थी।

उसने अपने गर्भ से प्रहस्त, कम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, महाबली, सुपार्श्व, संह्रादि, प्रधर्ष और भासकर्ण ये महाबली पुत्र और कुम्भीनसी, केकसी, राका और पुष्पोत्कटा नाम की कन्याएँ भी उत्पन्न कीं। इसी प्रकार माली ने अपनी वसुधा नाम्नी सुन्दर पत्नी से अनल, अनिल, हर और सम्पाति ये चार पुत्र उत्पन्न किये। यही चारों विभीषण के मन्त्री हुए। इस प्रकार राक्षस श्रेष्ठ उन तीनों राक्षसों का परिवार बहुत बढ़ा और वे तीनों अपने सैकड़ों पुत्रों के साथ इन्द्र सहित

सब देवताओं, ऋषियों, नागों और यक्षों को सताने लगे। वे सब दुरासद राक्षस, वायु के सदृश संसार में सर्वत्र भ्रमण करते। संग्राम क्षेत्र में काल के समान अमित तेजस्वी हो जाते और वरदान के प्रभाव से गर्वित हो सर्वदा यज्ञों को नष्ट किया करते।

सुकेश के पुत्रों द्वारा सताये गये देवताओं की ओर से विष्णुजी का कुपित हो उन्हें मारने जाना

उन राक्षसों से पीड़ित होकर देवता, ऋषि और तपस्वी भय से व्याकुल हो देवदेव महादेव की शरण में गये। वहाँ जाकर उन्होंने तिपुरमर्दक कामारि शिवजी को प्रणाम किया और भय से कम्पित वाणी द्वारा यह निवेदन किया कि—'हे भगवन् ! हे प्रजाध्यक्ष! ब्रह्माजी के वर से धृष्ट हो सुकेश के पुत्र सम्पूर्ण प्रजा को बड़ा कष्ट दे रहे हैं।

हमारे शरणदाता आश्रम को उन्होंने उजाड़ दिया जो अब वास करने योग्य नहीं रह गया। देवतओं को स्वर्ग से हटाकर वे स्वयं ही अधिकार कर लिये तथा देवताओं के समानही अब वे तीनों राक्षस स्वर्ग में विहार करते हैं माली, सुमाली और माल्यवान्—ये तीनों राक्षस कहते हैं कि—'विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, वरुण और सूर्य मैं ही हूँ।

अब तो उन दुर्धर्ष और अहंकारी राक्षसों के साथ रहना हमारे लिये बड़ा कठिन हो गया है; क्योंकि वे हम सबको बड़ा कष्ट दे रहे हैं। हे प्रभो! हम आपकी शरण आये हैं। उनका नाश कर, हमें अभय कीजिये।' तब उन समस्त देवताओं की इस प्रार्थना को सुनकर कपर्दी, नीललोहित महादेवजी ने कहा—देवताओं! मैं तो उन राक्षसों को न मारूँगा। क्योंकि मुझसे तो वे अवध्य हैं। परन्तु मैं तुम्हें वह उपाय बतलाता हूँ कि, उन्हें कौन मार सकेगा। हे महर्षियों! तुम लोग इसी प्रकार देवताओं सहित भगवान् विष्णु की शरण में जाओ, वे उनका नाशकर डालेंगे।

भगवान् शिवजी के ऐसा कहने पर देवता उनकी जय-जयकार कर निशाचरों के भय से पीड़ित हो विष्णुजी के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने शंख, चक्र, गदाधारी देवनारायण के चरणों में प्रणाम किया और व्याकुलता से कहा कि—'हे देव! सुकेश के तीनों पुत्रों ने वरदान की शक्ति से आक्रमण करके हमारे स्थान हरण कर लिये हैं। त्रिकूट पर्वत के शिखर पर लंका नाम की जो दुर्गम नगरी है, वहीं रहकर वे निशिचर हम सब देवताओं को क्लेश दे रहे हैं। हे मधूसूदन! हमारे हितार्थ आप उनका संहार करें, हम सब आपकी शरण आये हैं। आप हमारी रक्षा करें।

आपके अतिरिक्त ऐसा कोई नहीं है जो हमारी रक्षा करे। राक्षस मद से मतवाले हो रहे हैं। अत:आप अपने चक्र से उनका शिर काटकर हमें अभय कीजिये।

देवताओं के इस प्रकार के निवेदन को सुनकर देवाधिदेव जनार्दन उन्हें अभय देते हुए बोले—'शिव से दर्पित राक्षस सुकेश को मैं जानता हूँ तथा उसके पुत्रों को भी जिनमें माल्यवान् श्रेष्ठ है, मैं अपरिचित नहीं हूँ। वे अवश्य ही धर्म की मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हैं।

मैं उनका नाश करूँगा। तुम बस चिन्ता त्याग दो।' समर्थ विष्णु से ऐसा आश्वासन पाकर देवता उनकी जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थान को चले आये। जब इसका समाचार माल्यवान् को प्राप्त हुआ, तब उसने अपने दोनों भाईयों को बुलाकर विष्णुजी के कुपित होने की सब बात कह सुनाई और कहा कि अब इस विषय में हम लोग भी उचित कार्यवाही करें; क्योंकि हिरण्यकशिपु तथा अन्य देवद्रोही दैत्यों को इन्हीं विष्णु ने मारा है। नमुचि, कालनेमि, संह्लाद, राधेय, यमलार्जुन, हार्दिक्य, शुम्भ और निशुम्भ आदि बड़े-बड़े बलवान् और शक्तिशाली असुर इन्हीं के हाथ से मारे गये हैं। अब वही नारायण हमें भी मारना चाहते हैं।

अत: हम सब भी कोई उचित उपाय करें। तब ज्येष्ठ भ्राता माल्यवान् की यह बात सुनकर सुमाली और माली ने कहा—'भाई! हम लोगों ने स्वाध्याय, दान और यज्ञ किये हैं। ऐश्वर्य की रक्षा तथा उसका उपयोग भी किया है। हमने आरोग्यपद जीवन पाया है तथा अपनी कुल-परम्परागत हमने धर्म की स्थापना की है। हमने देवसेना रूपी अगाध सागर में प्रवेश करके बड़े-से-बड़े शत्रु पर भी विजय प्राप्त की है। अत: हम लोगों को मृत्यु से कोई भय नहीं है। नारायण,रुद्र, इन्द्र या यमराज कोई भी क्यों न हों, हमारे समक्ष भयातुर हैं।

परन्तु विष्णुजी हम पर क्यों कुपित हैं इसका कोई कारण नहीं ज्ञात होता। सम्भवत: देवताओं के ही उत्तेजन से उनका मन हमारी ओर से विपरीत हो गया है। अतएव हम सब एकत्र होकर आज ही सब देवताओं का वध कर डालें—यह उचित है। क्योंकि उन्हीं के कारण यह उपद्रव उपस्थित हुआ।' ऐसा विचार कर उन महाबली निशाचरों ने युद्धोद्योग की घोषणा कर दी। राक्षसों की सब सेना एकत्र होने लगी। रथ, हाथी, घोड़े, गधे, बैल, ऊँट, गरुड़ के समान पक्षी, सिंह, बाघ, सूअर और नीलगाय आदि वाहनों पर वे बलोन्मत्त निशाचर लंका छोड़कर देवलोक को चल दिये। उस समय पृथ्वी और आकाश में भयंकर उत्पात प्रकट हुए। सम्पूर्ण भूतों का लय-सा होता दिखाई पड़ा।

गीधों का समूह राक्षसों पर काल सदृश मँडराने लगा। फिर भी वे कालपाशबद्ध राक्षस नहीं लौटे और बढ़ते ही चले गये। जब देवदूतों ने राक्षसों के इस उद्योग का समाचार विष्णुजी से कहा, तब वह तत्क्षण ही सहस्र सूर्य के समान चमचमाता

कवच धारणकर, बाणों से पूर्ण दो तरकस लिये, कटिसूत्र धारण किये हुए, प्रदीप्त खड्ग उठा अपने वाहन गरुड़ पर जा बैठे और इनके अतिरिक्त उन्होंने पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, नंदकी खड्ग और शार्ङ्गधनुष इस प्रकार सभी श्रेष्ठ आयुधों को उन्होंने ग्रहण कर लिया।

फिर तो श्याम स्वरूप, पीताम्बर पहने और गरुड़ की पीठ पर सवार, श्रीनारायण सुमेरु पर्वत स्थित् विद्युत् मेघ के समान शोभित होते हुए राक्षसों के संहारार्थ वहाँ जा पहुँचे। उस समय सिद्ध, देवर्षि, महानाग, गन्धर्व और यक्ष उनकी स्तुति करने लगे।

देवासुर संग्राम

अब श्रीनारायण को युद्ध के लिए उद्यत देख इन राक्षसों ने उन पर अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा आरम्भ कर दी। नीलवर्ण की कान्ति वाले श्रीनारायण राक्षसों के घेरे में जा पड़े। फिर तो जैसे खेतों पर टीड्डियाँ और अग्नि पर मच्छर, मधु-घट पर डाँस और सागर में मगर गिरते हों, ऐसे ही राक्षसों के चलाये हुए वज्रवत् बाण श्रीहरि के शरीर में समाने लगे। मानों प्रलयकाल में जीव भगवान् के शरीर में समा रहे हों।

राक्षसी सेना के विविध बाणों से श्रीहरि आच्छादित हो गये। किन्तु उनके प्रहारों को उन्होंने ऐसा ही सहन किया जैसे मछलियों के वेग को समुद्र सहता है। तदनन्तर उन्होंने शार्ङ्गधनुष उठा अपने वज्रवत् बाणों से राक्षसों का संहार करना आरम्भ कर दिया और मन के समान वेगवान् पैने बाणों से श्रीविष्णुजी ने सैकड़ों-सहस्रों राक्षसों को मार डाला। बचे-बचाये राक्षस भाग गये। पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया। उससे त्रिलोक व्यथित हो उठा। राक्षस तो और भयभीत हुए तथाकितनों को बाणों से, कितनों को अपने चक्र से मार-काट कर सर्वदा के लिये पृथ्वी पर सुला दिया।

सुमाली के सारथी का शिर काट डाला। यह देख सुमाली का भाई माली अपना धनुष तान गुरुड़ पर दौड़ा। उसके धनुष से छूटे शर विष्णुजी के शरीर में प्रवेश करने लगे। किन्तु उससे कुछ भी क्षुभित न होकर भूतभावन भगवान् ने अपना धनुर्टकोरकर माली के ऊपर कितने ही बाण बरसाकर व्याकुल कर दिये। वह युद्ध से विमुख हो गया। शंख-चक्र-गदाधारी ने उसके मुकुट, ध्वजा और धनुष को काटकर उसके रथ के घोड़ों को भी मार गिराया। अब वह अपनी प्रचण्ड गदा ले विष्णुजी से युद्ध करने चला।

उसने गरुड़ की ललाट पर गदा का प्रहार किया। गरुड़ उस प्रहार को न सह सके और विष्णुजी को उन्होंने युद्ध से विमुख कर दिया। इससे राक्षस हर्षित हो गर्जने

लगे। इस पर नारायण ने सुदर्शन चक्र चला दिया। सुदर्शन ने माली का शिर काटकर धड़ से पृथक् कर दिया। यह देख देवतओं में हर्ष ध्वनि होने लगी। माली का वध हुआ देख सुमाली और माल्यवान् शोक सन्तप्त हो सैनिकों सहित लंका की ओर भाग गये। इतने में गरुड़ भी स्वस्थ हो गये।

फिर तो वे रणभूमि में जाकर क्रोध में भरकर अपने पंखों के पवन से राक्षसों को भगाने लगे। ऊपर से विष्णुजी अपने सब अस्त्रों से उन्हें मार-काटकर चूर्ण करने लगे। राक्षसों की बड़ी दुर्गति हुई। उनका भयंकर रक्तपात हुआ। वे कटकर खण्ड-खण्ड हो गए।

राक्षस माली और माल्यवान् के मरने पर सुमाली का रसातल-वास और कुबेर का लंका में वास

इस प्रकार जब पद्मनाभ भगवान् उस राक्षसी सेना को मारते और भगाते ही चले गए, तब अपनी सेना का इस प्रकार संहार होते देख माल्यवान्, जो भागकर लंका तक पहुँचा था, फिर पीछे की ओर लौट पड़ा और क्रोध में भरकर, लाल-लाल नेत्र केये भगवान् पुरुषोत्तम पद्मनाभ से बोला—हे नारायण! तुम पुरातन क्षात्रधर्म को नहीं जानते। क्योंकि युद्ध से भयभीत हम भागे हुओं को तुम क्षुद्रवत् मार रहे हो।

युद्ध से परांमुख हुए जो मारना पाप है। ऐसा करने वाला पुण्यलोक स्वर्ग को नहीं पाता। हे शंख-चक्र-गदाधारी! यदि तेरी इच्छा युद्ध करने की ही है तो आ मैं तेरे समक्ष खड़ा हूँ। मुझ पर तू अपना बल प्रयोग करे। विष्णुजी ने उसे खड़ा हुआ देखकर कहा—तुम लोगों ने देवताओं को त्रस्त कर दिया। मैंने राक्षस नाश रूप उन्हें वर दिया है। अत: मैं इस समय राक्षसों का विनाश कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर रहा हूँ।

मैं तुम सबको अवश्य ही मार डालूँगा। भले ही तुम रसातल तक क्यों न जाओ, मैं तुम्हारा पीछा करूँगा। विष्णुजी ऐसा कर ही रहे थे कि उस राक्षसेन्द्र ने उन देवदेव के वक्ष:स्थल पर अनी शक्ति चला दी। सुब्रह्मण्यप्रिय कमलनाभ भगवान् ने तत्क्षण ही उस शक्ति को अपनी छाती से निकाल उसी से माल्यवान् को मारा। भगवान् गोविन्द के हाथ से उस छूटी शक्ति ने माल्यवान् का कवच काट गिराया और उसकी छाती में प्रवेश कर उसे मूर्च्छित कर दिया। कुछ क्षण पश्चात् वह उठा और निश्चल खड़ा हो गया।

फिर उसने एक काँटेदार शूल उठा विष्णुजी को मारा। साथ ही उसने दौड़कर उनकी छाती में एक घूँसा भी मारा। फिर चार हाथ पीछे हटकर गरुड़ पर भी उसने प्रहार किया। फिर तो गरुड़जी ने जो अपने पंखों की प्रचण्ड वायु उसे दी तो

वह सूखे पत्तों की ढेर से उड़े पत्ते जैसे उड़ने लगा। तब अपने बड़े माल्यवान् को भागते देख सुमाली भी लंका को भाग गया।

माल्यवान् अपनी सेना सहित लंका में जा पहुँचा। इस प्रकार कमलनाथ भगवान् ने उन राक्षसों को कई बार मारा और भगाया और जब वे विष्णुजी की समक्षता न कर सके और सताये गये, तब वे अपने बाल-बच्चों सहित लंका का निवास त्यागकर पाताल में जा बसे। फिर सुमाली को राजा बना, वहीं सालकटङ्कटा के वश में रहने लगा। हे राम! तुमने जिन पुलस्त्य वंश वाले सब राक्षसों का संहार किया है, उनमें सुमाली, माल्यवान् और वे माली बड़े ही भाग्यशाली और प्रधान थे। अधिक क्या कहें, ये सब रावण से भी अधिक बलवान् थे।

शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णु के अतिरिक्त और कोई भी इन सुर-शत्रु राक्षसों का नाश नहीं कर सकता था। अत:तुम्हीं चार भुजाधारी, सनातन, अजेय अविनाशी और साक्षात् नारायण हो। राक्षसों का नाश करने के लिए ही तुम्हारा अवतार हुआ है। हे नराधिप! आज मैंने तुम्हें समस्त राक्षसों की जैसे उत्पत्ति हुई है सुना दी।

हे रघुत्तम! अब मैं तुम्हें रावण और उसके पुत्रों का अन्य वृत्तान्त और उनका अतुल प्रभाव सुनाता हूँ। इस प्रकार जब सुमाली रसातल में चला गया, तब श्रीकुबेरजी लंका में जा रहने लगे थे।

रावण, कुम्भकर्ण, सूर्पणखा तथा विभीषण का जन्म

कुछ दिन पश्चात् सुमाली राक्षस रसातल से निकलकर अपनी सुन्दरी कन्या सहित मनुष्यलोक में विचरने लगा। तब इस प्रकार पृथ्वी पर विचरते हुए उसने पुष्पक विमान पर आरूढ़ कुबेरजी को देखा, जो अपने पिता विश्रवा के दर्शन करने जा रहे थे। यह देख सुमाली को आश्चर्य हुआ। वह मृत्युलोक छोड़ रसातल में पहुँच अपनी पुत्री कैकसी से बोला—हे पुत्रि! अब तुम्हारे विवाह का समय हो चुका है।

अधिक क्या कहें, मानीजनों के लिए कन्या दु:ख का कारण होती है। क्योंकि यह कोई पहले से नहीं जानता कि, कन्या का विवाह कैसे वर से होगा। मातृकुल, पितृकुल और श्वसुरकुल—इन तनों कुलों को कन्या सदैव संशययुक्त रखती है। अत: अब तुम ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा मुनि को स्वयं जाकर वरण कर लो। हे पुत्री! विश्रवा को वरण करने से तुझे कुबेर के समान ही तेजस्वी पुत्र लाभ होगा।

फिर तो वह कन्या अपने पिता के वचनों को सुन और पितृ-गौरव को स्वीकार कर जहाँ विश्रवा मुनि तपस्या कर रहे थे, वहाँ जाकर खड़ी हो गई। तब पूर्ण

चन्द्राननना उस परम सुन्दरी को देख परमोदार विश्रवा मुनि ने उस कन्या से कहा—'भद्रे! तू किसकी दुहिता है और यहाँ कैसे आई है? तब उस कन्या ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! यहतो आप अपने तप से ही जान सकते हैं? फिर भी मैं आपको यह बतलाती हूँ कि, मैं अपने पिता की आज्ञा से आपके पास आई हूँ और मेरा नाम कैकसी है।

शेष वृत्तान्त आप स्वयं ही जान सकते हैं। विश्रवा मुनि ने ध्यान कर उसके आने का प्रयोजन ज्ञात कर लिया और तब उससे कहा—हे भद्रे! मैंने तेरे मन की बात जान ली। हे मत्तगजेन्द्रगामिनी! मुझसे पुत्र उत्पन्न कराने की तेरी अभिलाषा है, किन्तु इस दारुण समय में तू मेरे पास आई है।

अत: तुमसे क्रूर कर्मा राक्षस उत्पन्न होंगे। विश्रवा मुनि के ऐसे वचन सुन कैकसी ने कहा—हे भगवन् ! आप जैसे ब्रह्मवादी द्वारा में दुराचारी पुत्रों को नहीं चाहती। अत: आप मुझ पर कृपा कीजिये। इस पर मुनिश्रेष्ठ ने कहा—अच्छा, तेरा पिछला पुत्र मेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

हे राम! फिर तो कुछ काल पश्चात् उसने बड़ा भयंकर वीभत्सरूपी राक्षस पुत्र प्रसव किया। उसके दस सिर, बड़े-बड़े दाँत और वीस भुजाएँ थीं तथा वह काले रंग का पहाड़ के समान था। उसके लाल होंठ, विशाल शिर और चमकीले बाल थे। उसके जन्मते ही पृथ्वी काँपने लगी, समुद्र खलबला उठा,, आकाश से बड़े-बड़े उल्कापात हुए।

सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ गया और देवताओ ने रक्त की वर्षा की। तदनन्तर पितामह ब्रह्मा के समान ही उसके पिता ने उसका नामकरण किया और कहा कि इस दस शिर वाले पुत्र का नाम दसग्रीव होगा। फिर कैकसी के गर्भ से कुम्भकर्ण का जन्म हुआ जिसके समान लम्बा-चौड़ा कोई अन्य प्राणी नहीं था।

फिर विकराल मुख वाली सूर्पणखा उत्पन्न हुई और सबके पश्चात् धर्मात्मा विभीषण का जन्म हुआ। उसके जन्म के समय आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई तथा देवताओं ने दुन्दुभी बजायी और सबने साधु-साधु कहा। कुम्भकर्ण और दसग्रीव उस महावन में बढ़ने लगे। कुम्भकर्ण बड़ा उन्मत्त हुआ।

उसको भोजन से कभी तृप्ति ही न होती थी और तीनों लोकों में घूमकर महर्षियों का भक्षण किया करता था। विभीषण बाल्यकाल से ही धर्मातमा था। वह सर्वदा धर्म में स्थित रह स्वाध्याय करता और नियमित आहार करते हुए इन्द्रियों को अपने वश में रखता।

कुछ काल पश्चात् धनपति वैश्रवण पुष्पक विमान पर बैठ अपने पिता का

दर्शन करने के लिए वहाँ आये, जो अपने तेज से प्रदीप्त हो रहे थे। तब उन्हें देखकर राक्षस-कन्या कैकसी अपने पुत्र दशग्रीव के पास आई और बोली—हे पुत्र! अपने भाई वैश्रवण को देखा, ये कैसे तेजस्वी हैं।

क्या ही अच्छा होता यदि तुम भी अपने भाई के समान हो। यद्यपि तुम बड़े पराक्रमी हो, तथापि ऐसा प्रयत्न करो, जिससे तुम भी वैश्रवण के ही समान तेजस्वी और वैभवशाली हो जाओ।' माता की यह बात सुनकर प्रतापी दशग्रीव को बड़ा रोष हुआ।

उसने कहा—माँ! तुम चिन्ता न करो। मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि, अपने पराक्रम से भाई वैश्रवण के समान या उससे भी बढ़कर हो जाऊँगा। यह कहकर उसने तपस्या करने का विचार किया और गोकर्ण के पवित्र आश्रम पर जाकर वहाँ भाईयों सहित तप करने लगा। उसने घोर तपकर ब्रह्माजी को प्रसन्न कर लिया। उन्होंने प्रसन्न होकर उसे विजयदायक वर प्रदान किया।

रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण का तप तथा वरदान

इतना सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने अगस्त्य मुनि से पूछा—हे ब्रह्मन! उन महाबली भाईयों ने कैसे तपस्या की? यह सुन अगस्त्यी प्रसन्न होकर बोले—हे रामजी! कुम्भकर्ण अपनी इन्द्रियों को संयमित कर धर्म-मार्ग में स्थित हुआ और ग्रीष्मकाल में अपने चारों ओर अग्नि जलाकर पञ्चाग्नि तापने लगा। फिर वर्षा ऋतु में वीरासन से बैठकर जल की वृष्टि को सहता तथा शीतकाल में जल में बैठा रहता। इस प्रकार तप करते हुए उसने दस हजार वर्ष व्यतीत कर दिये। विभीषण तो सदा से ही धर्मात्मा थे। वे नित्य धर्म-परायण हो पाँच हजार वर्षों तक एक पैर से खड़े रहे।

उनका नियम समाप्त होने पर आकाश से पुष्प वृष्टि हुई तथा देवताओं ने स्तुति की। तदनन्तर विभीषण ने स्तुति की। तदनन्तर विभीषण ने अपनी दोनों भुजाएँ मस्तक के ऊपर उठाकर स्वाध्याय-परायण हो पाँच हजार वर्षों तक सूर्य की आराधना की। इस प्रकार मन को वश किये विभीषण ने भी दश हजार वर्ष व्यतीत किये। दशग्रीव ने तो दश हजार वर्ष तक निरन्तर उपवास किया और प्रत्येक हजार वर्ष के पूर्ण होने पर वह अपना एक मस्तक काटकर अग्नि में होम कर देता था। इस प्रकार नौ हजार वर्ष व्यतीत होने तक उसके नौ मस्तक अग्निदेव को अर्पित हो गये और जब दस हजार वर्ष पूर्ण होने लगा तब उसने अपना दशवाँ मस्तक काटना चाहा, फिर तो उसी क्षण उसके समक्ष ब्रह्माजी आ उपस्थित हुए।

उनके साथ देवता भी थे। तब ब्रह्माजी ने सन्तुष्ट होकर कहा—दशग्रीव! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, वर माँग। पितामह की यह वाणी सुनकर दशग्रीव का चित्त प्रसन्न

हो गया। उसने नत-मस्तक हो ब्रह्माजी को प्रणाम किया और हर्ष गद्‌गद वाणी में कहा—'भगवन् ! प्राणियों को मृत्यु का भय सर्वदा लगा रहता है, अतएव मैं अमर होना चाहता हूँ।' ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा नहीं हो सकता। तू और कोई वर माँग। हे राम! जब लोककर्त्ता ब्रह्माजी ने ऐसा कहा, तब दशग्रीव ने हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की—प्रजानाथ! मैं गुरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओं के लिये अवध्य होऊँ। अन्य प्राणियों की मुझे चिन्ता नहीं है।

मनुष्य आदि जीवों को तो मैं तृणावत् समझता हूँ। दशग्रीव के ऐसा कहने पर देवताओं सहित खड़े ब्रह्माजी ने कहा—अच्छा, ऐसा ही होगा। हे राम! दशग्रीव से ऐसा कहकर ब्रह्माजी उससे फिर बोले—हे अनाथ! मैं तेरे ऊपर अति प्रसन्न हूँ। अत: मैं अपनी ओर से भी तुझे वर देता हूँ। तूने अपने जिन सिरों को काटकर अग्नि में होम किया है, वे सिर तेरे पूर्ववत् हो जायेंगे तथा एक और भी तुझे यह दुर्लभ वर देता हूँ कि जिस समय तू जैसा रूप धारण करना चाहेगा, वैसा रूप तेरा हो जायेगा।

ब्रह्माजी के यह कहते ही राक्षस दशग्रीव के होम किए सब सिर पूर्ववत् निकल आये। हे राम! दशग्रीव को ऐसा वर दे, ब्रह्माजी विभीषण से बोले—हे वत्स विभीषण! मैं तेरी धर्म बुद्धि देखकर प्रसन्न हूँ, अत: हे सुव्रत! तू वर माँग। धर्मात्मा विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा—हे भगवन् ! जब आप लोक गुरु ब्रह्माजी स्वयं ही मुझ पर प्रसन्न हैं, तब मुझे और चाहिए ही क्या? मैं तो ऐसे ही कृतार्थ हो गया। परन्तु आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो हे सुव्रत! आप मुझे यह वर दें कि, परम आपदा पड़ने पर भी मेरी बुद्धि धर्म पर ही तत्पर रहे और हे भगवान् ! बिना किसी के शिक्षित किये ही मुझे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना आ जाय और जिस आश्रम में मैं रहूँ उसके प्रति मेरी सदैव निष्ठा वृद्धि होती रहे।

हे परमोदार! मेरा यही सर्वोत्कृष्ट अभीष्ट है। ब्रह्माजी ने कहा—एवमस्तु! तुम जैसा चाहते हो सब कुछ वैसा ही होगा। राक्षस-योनियों में उत्पन्न होकर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्म में प्रवृत्त नहीं होती, इसलिए मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ। विभीषण से ऐसा कहकर जब ब्रह्माजी कुम्भकर्ण को वर देने के लिए उद्यत हुए, तब सम्पूर्ण देवताओं ने हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की—'भगवान् ! आप कुम्भकर्ण को वरदान न दीजिये।' क्योंकि आपको स्वयं ज्ञात ही है कि बिना वर पाये ही वह दुष्ट तीनों लोकों को सताया करता है। नन्दनवन में सभी अप्सराओं और इन्द्र के दश सेवकों को इसने भक्षण कर डाला है। इसके भक्षण किये ऋषियों और मनुष्यों की तो गणना ही नहीं है।

जब बिना वर पाये ही इसकी यह करनी है, तब वर पाने पर तो यह समस्त

त्रिभुवन को ही चर्वण कर जायेगा। अतः हे अमितप्रभ! वर के द्वारा इसे अज्ञान प्रदान कीजिए। इससे लोक कल्याण भी होगा और इसका भी मान बना रहेगा। तब देवताओं के ऐसा कहने पर पद्म सम्भव ब्रह्माजी ने सरस्वती देवी को स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही सरस्वती आ पहुँची और हाथ जोड़ कर बोलीं—'हे देव! मैं आ गयी हूँ, कहिए क्या आज्ञा है? ब्रह्माजी ने कहा—'वाणी! तुम राक्षसराज कुम्भकर्ण की जिह्वा पर बैठकर इसके मुँह से देवताओं के अनुकूल बात निकालो!' सरस्वती ने कहा—'बहुत अच्छा'।

यह कह सरस्वती कुम्भकर्ण के मुँह में प्रवेश कर गयी। तब ब्रह्माजी ने कहा—महाबाहु कुम्भकर्ण! तुम भी जो चाहो वर माँगो। यह सुनकर कुम्भकर्ण ने कहा—'देवदेव! मैं यह चाहता हूँ कि, मैं अनेक वर्षों तक सोता रहूँ। ब्रह्माजी ने कहा तथास्तु! ऐसा कहकर देवताओं सहित ब्रह्माजी चले गए। पश्चात् सरस्वती देवी भी उसके मुख से निकल आईं और आकाश-मण्डल में चलीं गयी। अब कुम्भकर्ण को चेत हुआ।

वह दुरात्मा दुःखी हो चिन्ता करने लगा कि, हाय! मेरे मुख से ऐसा वचन क्यों निकल गया। मुझे ज्ञात होता है कि देवताओं ने आकर मुझे ठग लिया, इस प्रकार वे सब भाई तप द्वारा ब्रह्माजी से वरदान पाकर उस श्लेष्यान्तक वन में अपने पिता के पास फिर आ गये और सुख से रहने लगे।

कुबेर का लंकापुरी त्याग कैलाश पर अलकापुरी बसाना
तथा रावण का लंका प्रवेश

उधर सुमाली इन तीनों भाईयों के वरदान पाने का समाचार सुनकर मारीच, महोदर, प्रहस्त और विरूपाक्ष अपने इन मन्त्रियों और कुछ अनुचरों सहित पाताल से बाहर निकल दसग्रीव से मिलने आया। अपने प्राचीन रोष को लिये वह आकर दशग्रीव से हृदय लगाकर मिला और उसकी वर प्राप्ति की बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की तथा यह कहा कि जिस लंका नगरी में तुम्हारे भाई धनाध्यक्ष निवास करते हैं, वह हम लोगों की है।

पूर्व में वहाँ हम राक्षसों का निवास था। अब यदि साम, दाम, अथवा प्रयोग द्वारा पुनः आप उसे लौटाकर हस्तगत कर दें तो हम सबका कार्य सिद्ध हो जाय। दशग्रीव ने कहा—नानाजी! धनेश हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं, उनके सम्बन्ध में आप मुझसे ऐसी बात न कहें। सुमाली चुप हो गया। तब कुछ क्षण पश्चात् अवसर पाकर प्रहस्त ने नम्रता से कहा कि, हे महाबाहो! आप यह क्या कहते हैं? आप वीर हैं। वीरों का ऐसा कोई भ्रातृभाव नहीं चलता। देखिये, अदिति और दिति दोनों

सगी बहिनें हैं। उन दोनों का ही विवाह प्रजापित कश्यप से हुआ है। उनमें अदिति ने देवताओं और दिति ने दैत्यों को जन्म दिया है। पूर्व में वनों, पर्वतों और समुद्रों सहित यह समस्त पृश्वी दैत्यों के ही अधिकार में थी। परन्तु विष्णु ने युद्ध में दैत्यों को मारकर यह समस्त त्रिलोकी देवताओं के अधीन कर दी। आशय यह कि, एक आप ही ऐसा नहीं करने जा रहे हैं, ऐसा विपरीत आचरण पहले भी हुआ है।

प्रहस्त की यह बात सुनकर दशग्रीव प्रसन्न हो गया। उसने कहा—बहुत अच्छा! फिर तो दशग्रीव उन राक्षसों को साथ लेकर त्रिकूट पर्वत पर चला गया और वहाँ से उसने प्रहस्त को दूत बनाकर लंका में भेजते हुए यह कह दिया कि––'प्रहस्त! तुम शीघ्र ही जाकर यक्षराज कुबेर से शान्तिपूर्वक कह दो कि—'हे राजन् ! यह लंकापुरी राक्षसों की है।

यदि इसे आप प्रसन्नतापूर्वक हमें लौटा दीजिये तो आपके द्वारा यह धर्म का पालन समझा जायेगा।' फिर तो प्रहस्त कुबेर पालित लंका में गया और दशग्रीव ने जैसा सिखाया था, वैसा ही उनसे प्रस्ताव किया तथा यह कहा कि पूर्वकाल में यह रमणीक लंकापुरी सुमाली आदि राक्षसों के अधिकार में थी।

अब आप इसे इनको लौटा दें। हम प्रार्थना पूर्वक याचना करते हैं। इसीलिये आपके भाई दशग्रीव ने मुझे आपके पास भेजा है। तब प्रहस्त से ऐसी बात सुनकर कुबेर ने कहा—'पहले लंका निशाचरों से सूनी थी। उस समय पिताजी मुझे इसमें रहने की आज्ञा दी और मैंने आकर इसे बसाया।

हे दूत! तुम जाकर दशग्रीव से कह दो कि, यह पुरी तथा जो कुछ अकंटक यह राज्य मेरे पास है, वह सब तुम्हारा भी है। मेरा राज्य या धन तुमसे बँटा हुआ नहीं।' यह कहकर धनाध्यक्ष अपने पिता विश्रवा मुनि के पास चले गये और सब समाचार कह सुनाया तथा पूछा कि अब मैं क्या करूँ?

यह सुन मुनिश्रेष्ठ विश्रवा ने कहा—हे पुत्र! दशग्रीव ने मुझसे भी यह बात कही थी। इस पर उस दुर्बुद्धि को मैंने बहुत डाँटा और बार-बार कहा कि, ऐसी बुद्धि से तू नष्ट हो जायेगा। परन्तु जब से वर मिला है, तबसे वह बड़ा दुष्ट हो गया है और उसके लिए मान्य अमान्य कुछ नहीं रह गया है।

मेरे शाप से उसका स्वभाव बड़ा दारुण हो गया है। अतएव अब तुम अपने अनुयायियों सहित कैलास पर्वत पर जाओ और वहीं अपनी पुरी बनाओ और लंका को त्याग दो। कैलास बड़ा राज्य स्थान है। वहाँ तुम और भी सुखी रहोगे।

हे धनद! इस राक्षस से बैर करना उचित नहीं है; क्योंकि तुम जानते ही हो कि इसे सर्वोत्कृष्ट वर प्राप्त हो चुका है। यह सुन कुबेर अपने पिता की आज्ञा मान

सपरिवार, यात्रियों, वाहनों और धन को साथ ले, कैलास पर्वत पर चले गये। फिर तो प्रहस्त ने जाकर यह समाचार दशग्रीव से कह सुनाया, जो वहाँ पर्वत पर अपने मन्त्रियों और अनुचरों सहित बैठा था। उसने कहा—लंकापुरी खाली हो गई, अब आप हम लोगों सहित उसमें चलकर प्रवेश कीजिए।

फिर दशग्रीव अपने अनुचरों सहित लंका में जा बसा। लंका में पहुँच राक्षसों ने रावण को राजतिलक दिया तथा उसने उस पुरी को फिरसे बसाया। नीले मेघ के समान राक्षसों के समूह लंका में आकर बस गये। उधर कुबेर ने कैलास पर्वत पर जाकर अति सुन्दर इन्द्र की अमरावती के समान अपनी अलकापुरी स्थापना कर उसे बसाया।

रावण को सूर्पणखा के विवाह की चिन्ता

अब रावण अभिषिक्त हो अपने भाईयों सहित अपनी बहिन सूर्पणखा के विवाह की चिन्ता में पड़ा और कालकेयवंशी दानवेन्द्र विद्युज्जिह्व के साथ उसका व्याह कर दिया। पश्चात् जब एक दिन रावण वन में शिकार खेल रहा था कि, वहाँ उसकी दृष्टि दिति के पुत्र 'मय' पर जा पड़ी। उसके साथ एक सुन्दरी कन्या भी थी। तब रावण ने जो उसका समाचार पूछा तो 'मय' अपने जीवन का सब वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि, यह मेरी कन्या है जो हेमा नामक अप्सरा से उत्पन्न हुई है।

मैं इसके लिए योग्य वर की खोज में इधर-उधर विचर रहा हूँ, आप कौन हैं, अपना परिचय तो दीजिए। पुलस्त्यनन्दन रावण ने ब्रह्मा की तीसरी पीढ़ी में अपने को उत्पन्न होने वाला बतलाकर कहा कि, इस प्रकार मेरा नाम दशग्रीव है। राक्षसेन्द्र के ऐसा कहने पर मय ने अपनी कन्या का हाथ दशग्रीव के हाथ में दे दिया और कहा कि यह मेरी कन्या हेमा अप्सरा से उत्पन्न हुई है, इनका नाम मन्दोदरी है, इसे आप पत्नी के रूप में ग्रहण कीजिये। दशग्रीव ने कहा—बहुत अच्छा।

फिर तो वहीं अग्नि प्रदीप्त कर उसने मन्दोदरी का पाणिग्रहण किया। मय ने उसको एक अद्भुत और अमोघ शक्ति भी प्रदान की। दशग्रीव ने उसी शक्ति से लक्ष्मण पर प्रहार किया था। इस प्रकार भार्या ग्रहण कर दशग्रीव लंका में चला गया। लंका में जाकर फिर उसने अपने दोनों भाईयों का भी विवाह किया।

कुम्भकर्ण का व्याह वैरोचन की पौत्री अर्थात् बलि की पुत्री वज्रज्वाला से और गन्धर्वराज शैलूष की धर्मज्ञा पुत्री सरमा से विभीषण का विवाह हुआ। समय पाकर मन्दोदरी के गर्भ से मेघनाद उत्पन्न हुआ। उसी को इन्द्रजीत कहा जाता है। उसने जन्म लेते ही मेघ-सा गर्जन किया था, जिससे समस्त लंकानिवासी स्तम्भित हो गए थे, इससे दशग्रीव ने उसका नाम मेघनाद रखा था।

रावण का कुबेर के दूत को मारना

अब कुछ दिनों के पश्चात् ब्रह्मा के वरदान के अनुसार कुम्भकर्ण को मूर्तिमती तीव्र निद्रा ने आ घेरा। तब उसने समीप स्थित अपने भाई रावण से कहा कि—'हे राजन! अब मुझे निद्रा बाधित कर रही है। अतएव मेरे सोने के लिए कोई पृथक् एक भवन बनवा दीजिए। यह सुन रावण ने एक योजन चौड़ा और दो योजन लम्बा एक सुन्दर गृह निर्माण करा दिया। उसका वह शयनगृहचित्र-विचित्र बड़ा ही दर्शनीय था।

महाबली कुम्भकर्ण निद्राविष्ट हो सहस्रों वर्षों तक उसमें पड़ा सोता ही रहा और जागा नहीं। उन दिनों रावण निरंकुश हो देवताओं, ऋषियों, यक्षों और गन्धर्वों को मारता-पीटता रहा। उसने बड़े-बड़े उपद्रव किये। तब धर्मज्ञ धनेश्वर ने अपना दूत भेजकर रावण को यह बतलाया कि—'आप अपने चरित्र को सुधारें और अपनी शक्ति को धर्म के कार्य में व्यय करें। यह सब उपद्रव करना उचित नहीं है।

अब तक जो कुछ किए हो वही बहुत है। अब तो ऐसा कोई कार्य न करो कि, जिससे कुल में दूषण लगे। अन्यथा देवता और देवर्षिगण मिलकर तुम्हारे मारने का उपाय सोच रहे हैं।' कुबेर का यह सन्देश सुनकर रावण के नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गये। उसने अपने दाँत कटकटाते और हाथ मलते हुए दूत को यह कहकर मार दिया कि, 'धनेश्वर मेरा बड़ा भाई है इसी से क्षमा करता हूँ, अन्यथा मैं उसे मार डालता। परन्तु अब तू यहाँ से जीवित नहीं जायेगा। उसे मारकर दुष्ट रावण ने राक्षसों को खिला दिया। पश्चात् वह रावण त्रिलोकी को विजय करने चला और सर्वप्रथम कुबेर पर ही उसने आक्रमण किया।

रावण का विजय हेतु पर्यटन और कुबेर से युद्ध

तब यह देखकर कि रावण मुझसे युद्ध करने आया है, कुबेर ने यक्षों को उससे युद्ध करने की आज्ञा दी। यक्षों और राक्षसों का भयंकर युद्ध हुआ। अल्प क्षण में ही रावण के मंत्री व्यथित हो गए। रावण भी रुधिर से नहा गया, तथापि कालदण्ड के समान अपनी गदा उठाकर उसने अनेक यक्षों को मार डाला। बात की बात में उसने यक्षों की सेना को भस्म कर दिया। बहुत थोड़े ही यक्ष शेष रह गए। तब कुबेर ने फिर बहुत से यक्षों को राक्षसों से युद्ध करने के लिए भेजा।

संयोधकटक नामक बड़ी वीर यक्ष भी अपनी बड़ी बलवती सेना लेकर आ पहुँचा। उसने अपने चक्र के प्रहार से राक्षस मारीच को मारकर मूर्च्छित कर दिया। परन्तु मारीच फिर जी उठा और युद्ध कर उस यक्ष को मार भगाया। पश्चात् रावण कुबेर-पालित अलकापुरी के प्रधान द्वार पर जाकर जा लगा।

वहाँ कुबेर के सैनिक यक्षों सहित द्वारपाल से उसका युद्ध हुआ। द्वारपाल ने

उसे बहुत मारा भी, परन्तु ब्रह्मा के वरदान से वह वीर धराशायी ने हुआ। फिर तो रावण ने उस द्वारपाल को मारकर पुरी में प्रवेश किया।

रावण का कुबेर को युद्ध में परास्त कर पुष्पक विमान प्राप्त करना

तदनन्तर कुबेर ने मणिभद्र नामक महायक्ष को चार हजार यक्ष सैनिकों सहित रावण से युद्ध करने को भेजा। परन्तु रावण के मंत्री प्रहस्त और महोदर ने मिलकर दो हजार यक्षों को युद्ध में मार डाला और अकेले मारीच ने दो हजार यक्षों का संहार किया। क्योंकि राक्षसों का युद्ध माया के बल से होता था और यक्षों का सरलता युक्त था।

इससे यक्षों से राक्षस प्रबल हुए। परन्तु यक्ष मणिभद्र ने राक्षस धूम्राक्ष से बड़ा युद्ध किया। उसने अपनी गदा के प्रहारों से धूम्राक्ष को मार-काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया। वह लहुलूहान हो मूर्च्छित हो गया। यह देख रावण मणिभद्र पर टूट पड़ा। उसने मणिभद्र पर अपनी शक्तियों का प्रहार कर उसका मुकुट काट गिराया। इससे वह यक्ष वीर युद्ध क्षेत्र से पलायन कर गया।

यह देख राक्षस सिंहनाद करने लगे। इतने में कुबेर हाथ में गदा लिये दिखाई पड़े। उनके साथ कोष-रक्षक शुक और प्रोष्टपद तथा पद्म और शंखनामक कोष-देवता भी आए। उन्होंने आकर देखा तो पितृ-शापित रावण धृष्टता से खड़ा है और अपने ज्येष्ठ भ्राता का प्रणामादि शिष्टाचार भी नहीं करता।

तब ऐसे रावण को देख कुबेरजी ने पितामह कुलोचित वचन उससे कहा—'हे दुर्मते! मेरे मना करने पर भी तू नहीं मानता। इसका कटुफल तू नरक में पायेगा। अब तुझे सूझ पड़ेगा। अज्ञान का कर्मफल पश्चात् पाकर समझ पड़ता है। क्या तुझे अपने क्रूर कर्मों का नितान्त ही ज्ञान नहीं रहा? अरे मूढ़! जो अपने माता-पिता, ब्राह्मण और आचार्य का अपमान करता है, उसे यमराज के यहाँ बड़ा कष्ट प्राप्त होता है।

परन्तु मैं तुमसे अधिक वार्तालाप क्या करूँ? क्योंकि मूर्ख से अधिक वार्तालाप न करना चाहिए।' ऐसा कह कुबेर ने रावण के मारीच आदि मन्त्रियों पर भयानक प्रहार कर दिया। वे ताड़ित हो युद्ध क्षेत्र त्याग पलायन कर गये। तब रावण के मन्त्रियों को भगाकर महाबलवान् कुबेर ने रावण के मस्तक पर अपनी प्रचण्ड गदा का प्रहार किया, किन्तु रावण अपने स्थान से विचलित न हुआ। अब कुबेर और रावण दोनों परस्पर युद्ध करने लगे।

रावण व्याघ्र, शूकर, मेघ, पर्वत, सागर, वृक्ष, यक्ष और दैत्य के रूपों में दृष्टि आने लगा। उसका मुख्य स्वरूप दृष्टिगोचर ही न होता। उसी समय रावण ने अपने एक विशाल अस्त्र से कुबेर की विशाल गदा को विद्ध कर दिया। साथ ही उनके

मस्तक पर भी प्रहार किया। उस प्रहार को कुबेर सहन न कर सके और रक्त वमन करते हुए वृक्ष के समान धराशायी हो गए!

यद्यपि निधि देवताओं ने कुबेर को उठाकर नन्दन वन में पहुँचाया और सचेष्ट किया। इस प्रकार धनेश्वर को परास्त कर रावण ने विजय स्वरूप उनका पुष्पक विमान छीन लिया। पुष्पक की विचित्र रचना थी। अब दुर्मति रावण उस पर आरूढ़ हो कैलास से नीचे उतरा। अब उसने अपने को ऐसा समझा मानों त्रिलोकी को विजय कर लिया।

रावण को नन्दी का शाप

हे राम! इस प्रकार रावण अपने भ्राता कुबेर को विजय कर स्वामिकार्तिक के जन्मस्थान 'शरतण' नामक सरकण्डों के विशाल वन में जा पहुँचा। वहां से आगे के पर्वतों पर चढ़कर जब वह चला तो पुष्पक की गति अवरुद्ध हो गयी। वहाँ रावण सोचने लगा कि, पुष्पक क्यों नहीं चलता है? इतने ही में अति करालरूप काले-पीले रंगों वाले अति लघुरूप उसे नन्दीश्वर दिखाई पड़े, जो बड़े ही विकट रूप मूँढ़ मुड़ाये शिव की सेवा में लगे रहने वाले थे।

उन्होंने रावण के निकट जाकर निर्भीकता से कहा 'हे दशग्रीव! यहाँ शिवजी क्रीड़ा कर रहे हैं। अत: तू यहाँ से चला जा। इस पर्वत पर चाहे गरुड़, नाग, यक्ष, देवता, गन्धर्व और राक्षस कोई भी हो, नहीं जा सकता।' नन्दी के इन वचनों को सुनकर रावण मारे क्रोध के जल गया, उसके नेत्र लाल हो गये। वह अपने कुण्डलों को हिलाता हुआ पुष्पक विमान से उतर पड़ा और यह कहता हुआ की यह कौन शंकर है? पर्वत के नीचे आ गया।

वहाँ रावण ने देखा कि, नन्दी दीप्त शूल लिये दूसरे महादेव के समान ही शंकरजी के निकट खड़े हैं। तब वानर-जैसा नन्दीश्वर का मुख देख-देख रावण अट्टहास करने लगा। यह देख नन्दी बड़े कुपित हुए। उन्होंने कहा—दशानन! तूने जो मेरे वानररूप की अवज्ञा कर अट्टहास किया है तो मेरे समान ही तेजस्वी वानर तेरे वंश का मूलोच्छेदन करने के लिये उत्पन्न होंगे।

वे ही तेरे इस प्रबल अहंकार और शारीरिक बल के दर्प को दूर करेंगे। यद्यपि मैं तुझे अभी इसी क्षण मार डालता, तथापि क्या करूँ, तू तो स्वकृत दुष्कर्मों से पूर्व ही मर चुका है। फिर मरे को मारना ही क्या है? महात्मा नन्दीश्वर के यह कहते ही देवताओं ने आकाश से दुन्दुभी बजायी और पुष्प वर्षा की। परन्तु महाबली रावण ने इसकी किञ्चित् भी चिन्ता न की।

पर्वत के निकट जा वृषभपति रुद्र की अवहेलना करने के लिए उस पर्वत

को ही उखाड़ देना चाहा और तत्क्षण ही अपनी दोनों भुजाएँ उसके भीतर प्रवेश कर पर्वत को उठा लेना चाहा। पर्वत काँपने लगा। पर्वत के कम्प से महादेवजी के समस्त गण काँप गये और पार्वतीजी भी भयभीत हो महेश्वर से चिपट गईं। हे राम! फिर महादेवजी ने बिना किसी प्रयास के ही अपने पैर के अँगूठे से उस पर्वत को दबा दिया।

पर्वत के दबाते उनके नीचे रावण की विशाल भुजाएँ पिसने लगी। वह रोष से तथा भुजाओं के दबने की पीड़ा से सहसा ऐसे वेग से चिल्लाया कि उसके चीत्कार से त्रयलोक कम्पित हो गया। वज्रपात जैसा शब्द सुनाई पड़ा। देवता विचलित हो गये, समुद्र संक्षुब्ध हो गये, पर्वत काँप उठे। तब दशान के मन्त्रियों ने उससे कहा—हे दशानन! अब तुम उमापति नीलकंठ महादेव को स्तुति से प्रसन्न करो।

यहाँ तुम्हारी रक्षा का अब कोई अन्य उपाय नहीं है। महादेव जी बड़े दयालु हैं। शरण जाते ही वह तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे। तब दशानन ने शिवजी को प्रणाम कर सामवेद के विविध मन्त्रों द्वारा उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया और उस प्रकार रोते-बिलकते उसे एक सहस्त्र वर्ष व्यतीत हो गये, तब महादेवजी रावण पर प्रसन्न हुए और पर्वत से भुजाएँ निकालने का उसे अवसर दिया। साथ ही उसी दिनसे उसके उस चीत्कार के कारण उन्होंने ही उसका नाम 'राव' रख दिया और कहा कि अब तेरी जिधर इच्छा हो, चला जा।

उसी समय श्री महादेवजी को प्रसन्न देख रावण ने देवताओं, गन्धर्वों, दानवों, राक्षसों, गुह्यकों, नागों तथा अन्य प्राणियों से अपनी अवध्यता तथा ब्रह्माजी द्वारा वर प्राप्ति की बात कहकर यह निवेदन किया कि—इतने पर भी मेरी जो शेष आयु रह गई है वह मेरे किसी कार्य से नष्ट न हो, इसका मुझे वर दीजिये और अपना एक शस्त्र भी दीजिए। इस पर शंकरजी ने उसे अपना चन्द्रहास नामक महादीप्त खड्ग (तलवार) प्रदान किया तथा उसकी शेष आयु भी दे दी।

साथ ही यह भी आदेश दे दिया कि, इस खड्ग का कभी अनादर मत करना अन्यथा यह मेरे पास चला आयेगा। रावण महादेवजी को प्रणाम कर पुष्पक पर बैठ वहाँ से लौट पड़ा और पृथ्वी के सभी बलवानों और पराक्रमी क्षत्रियों को सताने लगा। कितने ही शूरवीर उसकी अवज्ञा पर मार डाले गये। बुद्धिमान् जनों ने उसे दुर्जय समझ अपनी पराजय स्वीकार कर ली।

वेदवती द्वारा रावण को शाप

हे राजन् ! अब महाबली रावण पृथ्वी पर विचरता हुआ एक दिन हिमालय के वन में जा पहुँचा। वहाँ उसने साक्षात् देवकन्या के समान एक ऐसी कन्या देखी

जो मृगचर्म धारण किये तपोनुष्ठान में रत थी। उसे देखते ही रावण कामदेव से पीड़ित हो गया और मुसका कर उसका परिचय पूछते हुए उसे विमोहित कर अपनी अभिलाषा तृप्त करना चाहा और कहा कि तेरी युवावस्था और सौन्दर्य इस प्रकार के तप के योग्य नहीं है, तू अपने इस संकल्प को त्याग दे। फिर तू यह तो बतला कि, इतना कठिन तप किसलिए करती है?

तू किसकी पुत्री है और तेरा पति कौन है? तब रावण के इस प्रकार पूछने पर उस यशस्विनी एवं तपस्विनी कन्या ने रावण का सविधि आतिथ्य करते हुए कहा कि 'मैं ब्रह्मर्षि कुशध्वज की पुत्री हूँ। मेरा नाम वेदवती है। मेरे विवाह के लिए कितने ही देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग मेरे पिता से मिले और मुझसे ब्याह कर देने की प्रार्थना की, परन्तु मेरे पिता यह चाहते थे कि उनके जामात्र सुरेश्वर विष्णु हों, अन्य नहीं। इससे बलगर्वित दैत्येन्द्र शुम्भ ने उन्हें रात्रि में सोते समय मार डाला।

मेरी महाभागा माता उनकी शव के साथ सती हो गयीं। तबसे मैं अपने पिता की इच्छानुसार श्रीविष्णु को ही अपना पति बनाने के लिए तप कर रही हूँ। जो सत्य बात थी, वह मैंने तुमसे कह दी। उन पुरुषोत्तम के अतिरिक्त मेरा कोई अन्य पति नहीं हो सकता। हे रावण! मैंने तुमको जान लिया। तुम यहाँ से चले जाओ। मैं अपने तपोबल से त्रैलोक्य में जो कुछ होता है वह सब जानती हूँ। यह सुनकर कामबाण से पीड़ित रावण विमान से उतर पड़ा और अश्लीलतापूर्वक बकता हुआ उसके केशों को पकड़ कर उससे बर्बस अपनी काम-पिपाशा शान्त करना चाहा तथा विष्णु की निन्दा भी किया।

इस पर वेदवती ने क्रोध में भरकर अपने हाथ से जो इस समय खड्ग रूप हो गये थे—अपने उन बालों को काट डाला और अपने क्रोध से अग्नि प्रदीप्त कर रावण को भस्म करती हुई उस अग्नि में प्रवेश कर गई तथा यह कह गई कि पापात्मा! तेरा वध करने के लिए मैं पुनः उत्पन्न होऊँगी। क्योंकि पापी पुरुष को मारना स्त्रियों के वश की बात नहीं है।

यदि मैं तुझे शाप दूँ तो मेरी तपस्या क्षीण होगी। यदि मैंने कुछ भी सुकृत किया हो तो उसके पुण्य से फिर किसी धर्मात्मा के गृह में अयोनिज जन्म धारण करूँ। ऐसा कह वेदवती उस धधकती चिता में कूद पड़ी। चिता के चारों ओर पुष्प छितरा उठे। हे प्रभो! वही वेदवती जनकराजा के गृह में कन्या रूप से उत्पन्न होकर तुम्हारी भार्या हुई है। हे महाबाहो! तुम भी वे ही सनातन विष्णु हो।

रावण का राजा मरुत् को जीतना

वेदवती के अग्नि में प्रवेश करने के पश्चात् रावण पुष्पक विमान पर बैठ

चारों ओर पृथ्वी में विचरते हुये उशीरबीज नामक उस देश में जा पहुँचा कि जहाँ देवताओं सहित राजा मरुत यज्ञ कर रहे थे और बृहस्पतिजी के सगे भ्राता धर्मज्ञ संवर्त ऋषि सब देवताओं सहित उनका यज्ञ करा रहे थे। तब वरदान से अजित रावण के वहाँ पहुँचते ही उसे देख, उसके सताने के भय से बस देवता पक्षिरूप होकर पलायन कर गए। रावण अपवित्र कुत्ते के समान उस यज्ञशाला में प्रवेश कर गया और वहाँ जाकर राजा मरुत से बोला—या तो तुम मुझसे युद्ध करो या हार मानो।

मरुत ने पूछा—तुम कौंन हो? यह सुनकर रावण अट्टहास करते हुए बोला—मैं तुम्हारी सरलता पर प्रसन्न हूँ। क्योंकि तुम धनद कुबेर के लघु भ्राता मुझ रावण को नहीं पहचान रहे हो। त्रैलोक्य में मेरे बल को कौन नहीं जानता? जिस रावण ने अपने ज्येष्ठ भ्राता को पराजित कर उसका यह पुष्पक विमान छीन लिया, उसे कौंन नहीं जानता? राजा मरुत ने कहा—तुम धन्य हो। वास्तव में तुम्हारे जैसा श्लाघ्य पुरुष तो त्रिलोकी में कोई नहीं है जिसने अपने बड़े भाई को युद्ध में परास्त कर दिया। भला इस पर भी तुम अपनी प्रशंसा करते हो? रे दुष्ट! खड़ा रह। अब तू मेरे समक्ष जीता नहीं जा सकता।

मैं अपने पैने बाणों से तुझे आज ही यमालय भेजता हूँ। तदनन्तर राजा मरुत धनुष बाण ले रावण से युद्ध करने के लिए यज्ञशाला से बाहर निकले। किन्तु संवर्त मुनि ने उनके आगे आकर उनका मार्ग रोक दिया और कहा—यह माहेश्वर यज्ञ है, इसमें क्रोध करना अपके कुल के लिय घातक होगा, अतः इससे युद्ध न कीजिये।

यज्ञदीक्षित पुरुष क्रोध नहीं करते। फिर यह राक्षस अजेय भी है। तब अपने गुरु की आज्ञा मानकर राजा मरुत ने रावण से युद्ध करने का विचार त्याग दिया। रावण के मन्त्री ने कहा—मरुत हार गया। फिर तो ऐसी घोषणा कर यज्ञ में आये हुए ऋषियों को खा-चबाकर, उनका रक्त पेटभर पीकर रावण पुनः पृथ्वी मण्डल पर विचरने लगा।

इक्ष्वाकुवंशी महाराज अनरण्य का रावण को शाप

अब राजा मरुत को जीतकर राक्षसाधिप युद्धकांक्षी रावण नगरों में विचरने लगा। उसने महेन्द्र और वरुण के समान श्रेष्ठ राजाओं के समीप जाकर कहा कि, या तो तुम मुझसे युद्ध करो या अपनी हार मानो। तब बुद्धिमान् राजाओं ने परस्पर गोष्ठी कर अपनी हार मान ली। क्योंकि रावण को वरदान का बल था। मरुत, महेन्द्र, वरुण, सुरथ, गाधि, गय और पुरूरवा आदि सब राजाओं ने उससे अपनी पराजय स्वीकार ली। तब रावण अयोध्यापुरी में पहुँचा।

वहाँ महाराज अनरण्य से भी उसने वैसा ही कहा। किन्तु अयोध्यापति

महाराज अनरण्य ने कहा—मैं तुझसे युद्ध करूँगा। महाराज अनरण्य ने पहले ही से रावण का वृत्तान्त सुनकर अपनी सेना सजा रखी थी। फिर तो उनकी वह सेना राक्षस के वधार्थ शीघ्र ही युद्ध के लिए निकल पड़ी। उसमें दश हजार हाथी, एक लाख घोड़े तथा सहस्रों अश्वारोही और पदाती सैनिक थे।

दोनों ओर से युद्ध हुआ। महाराज अनरण्य और राक्षसेन्द्र रावण का अद्भुत युद्ध होने लगा। किन्तु कुछ ही क्षणों में रावण के बलवान् मन्त्रियों एवं मायावी राक्षसों ने उनकी समस्त सेना को काट-मारकर बचे बचाये सैनिकों को मार पीटकर भगा दिया। पृथ्वी रक्तरंजित हो गई। युद्ध क्षेत्र में भयानक दृश्य उपस्थित हो गया। फिर महाराज अनरण्य ने राक्षसराज के शिर में आठ सौ बाण मार उसे विक्षिप्त कर देना चाहा।

किन्तु उन सब बाणों से रावण को खरोंच तक न लगी। इतने में क्रोध में भरकर रावण ने महाराज के मस्तक पर जो एक थप्पड़ लगाया तो उसे वे सहन न कर सके और जैसे वन में बिजली का मारा साखू का वृक्ष गिर पड़ता है, वैसे ही वे धराशायी हुए। आहत होने पर उन्होंने कहा—'हे राक्षस! यह तो तुमने इक्ष्वाकुकुल का अपमान किया है, इसके कारण मैं कहता हूँ कि यदि मैंने दान दिया हो, होम किया हो, तप किया हो और न्यायपूर्वक प्रजापालन किया हो तो इक्ष्वाकुकुल में दाशरथी राम उत्पन्न होकर तेरा वध करें।

महाराज अनरण्य के मुख से यह वचन निकलते ही मेघों की गर्जना के तुल्य आकाश से नगाड़े के बजने का शब्द सुनाई पड़ा और पुष्प-वृष्टि हुई। तदनन्तर महाराज अनरण्य स्वर्ग सिधारे और रावण भी चला गया।

नारद जी द्वारा रावण को यमपुर विजय की प्रेरणा

राक्षसाधिप रावण पृथ्वी पर मनुष्यों को कष्ट देता हुआ विचर रहा था कि उसने मेघ पर आरूढ़ मुनिपुङ्गव नारदजी को देखा। उसने उन्हें प्रणाम किया और कुशल पूछ आगमन का कारण पूछा। देवर्षि ने कहा—विश्रवानन्दन राक्षसेन्द्र! खड़े रहो। मैं तुम्हारे मन्त्रियों और तुम पर बड़ा प्रसन्न हूँ।

तुमने तो गन्धर्व और नागादिकों को वैसे ही पराजित कर दिया है कि जैसे विष्णु ने दैत्यों को। अतः मैं तुमसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। अब मैं तुम्हारे हित की कुछ बात कहता हूँ, ध्यान से सुनो। हे तात! तुम तो देवताओं से भी अवध्य हो। फिर इन बेचारे मनुष्यो को क्यों मारते हो।

ये तो स्वयं ही मृत्यु के वशीभूत हैं। ये तो बेचारे स्वयं ही सदा विपत्तिग्रस्त रहते हैं और विशेषतः अपना कल्याण करने में अत्यन्त ही मूढ़ हैं। जरा आदि सैकड़ों

व्याधियों से आवृत्त रहते हैं। अत: ऐसों के मारने से क्या लाभ है? वे तो अपने सुख-दु:ख के समय को भी नहीं जानते। फिर ये सब मरकर यमपुरी ही में तो जायेंगे।

अतएव हे पौलस्त्यनन्दन! तुम यमराज की पुरी पर चढ़ाई करो। उस पुरी को जीतो; क्योंकि उसे जीतने पर ही तुम अपने से सबको जीता हुआ समझोगे। तब इस प्रकार नारद जी के समझाये जाने पर स्वतेज से दीप्त लंकापति रावण ने उन देवर्षि को प्रणाम किया और मुसकुराता हुआ कहने लगा—देवर्षि! आपका कहना यथार्थ है, मैं ऐसा ही करूँगा।

इस समय मैं विजयार्थ रसातल की यात्रा कर रहा हूँ। फिर त्रैलोक्य विजय कर नागों और देवताओं को अपना वशवर्ती बनाऊँगा और पुन: अमृत प्राप्ति के लिये समुद्र-मन्थन भी करूँगा। इस पर नारद जी ने कहा—अच्छा, यदि तुम्हें रसातल ही जाना है, तो अन्य मार्ग से क्यों जाते हो? यह मार्ग सीधे प्रेतराज के नगर यमपुरी को चला गया है, इससे तुम सीधे उनके समक्ष जा निकलोगे।

यह सुनकर रावण ने शरद्काल के मेघ के समान हँसकर कहा—बहुत अच्छा हम ऐसा ही करेंगे। अब मैं यम के वधार्थ ही इस दक्षिण दिशा के मार्ग से जाता हूँ। मेरी तो यही पूर्व प्रतिज्ञा थी कि, मैं चारों लोकपालों को विजय करूँ। उसमें सब प्राणियों को सताने वाले उस यम को मैं मारूँगा। ऐसा कह और नारदजी को प्रणाम कर रावण दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ा। नारदजी क्षण भर मौन हो विचार करते रहे। उन यमराज को कैसे यह रावण जीतेगा? इसका तो मुझे बड़ा कुतूहल है। अत: स्वयं ही चलकर यमराज और रावण का युद्ध देखूँगा।

रावण-यमराज युद्ध

यमपुरी पहुँच कर रावण ने देखा कि सब प्राणी बँधकर मारे-पीटे जा रहे हैं। सब प्राणी पुण्यों और पापों का फल पा रहे हैं। जल के स्थान में रक्त से पूर्ण अति गम्भीर वैतरणी नदी को सब पार कर रहे और बालू पर घसीटे जा रहे हैं। तब इस प्रकार के दृश्य देखते हुए रावण ने उन पापियों को, जो अपने पापकर्म फल से कष्ट भोगाये जा रहे थे, उन्हें अपने बल से मुक्त कर दिया। फिर तो रावण द्वारा जीवों को मुक्त हुआ देख यम-किन्नरों ने उस पर आक्रमण कर दिया।

यमराज के उन लाखों सैनिकों की गणना नहीं हो सकती जो अभिलषित युद्ध करने लगे। उधर रावण भी स्वयं युद्ध कर रहा था। कुछ क्षण पश्चात् सभी यम किन्नर एक स्वर से रावण पर टूट पड़े और उस पर शूलों की वर्षा करने लगे। उस शूल वर्षा से रावण का शरीर बिंध उठा और उसने रक्त स्नान सा कर लिया। परन्तु वह यमराज के सैनिकों पर बड़ी-बड़ी शिलाएँ बरसाने लगा। उधर यमकिन्नरों ने भी

अपने भी अपने भयानक प्रहारों से रावण का धनुष काट दिया और उसके कवच को तोड़ डाला।

फिर भी वह युद्ध करता ही रहा और अब वह पुष्पक विमान से उतर पृथ्वी पर खड़ा हो हाथ में दूसरा धनुष ले, दूसरे यमराज के समान, युद्ध के लिये सन्नद्ध हुआ। फिर पशुपतास्त्र को अभिमन्त्रित कर सबको ललकारते हुए रावण ने तिष्ठ-तिष्ठ कह उन पर भयानक प्रहार किया। पशुपतास्त्र का रूप धूम्र और ज्वालमाला से युक्त था।

ज्वालमाली बना रावण यम की सेना पर उसे भस्मसात् करता हुआ दौड़ रहा था। उसके उस अस्त्र के तेज से यमराज के समस्त सैनिक त्रस्त हो गिर पड़े। यह देख भयंकर विक्रमी राक्षस रावण अपने मन्त्रियों सहित पृथ्वी को कम्पित करता हुआ-सा महानाद करने लगा।

रावण के इस घोर नाद को सुनकर यमराज ने समझ लिया कि रावण की विजय हो गई और मेरी सेना नष्ट हो गई। तब वह स्वयं अपने विशाल रथ पर बैठ पाश और मुद्गर ले युद्ध करने आया। तदनन्तर सारथी ने उनके लाल रंग वाले घोड़ों को हाँका तो वह रथ घोर शब्द करता हुआ राक्षसराज रावण की ओर चल पड़ा। यम को स्वयं आता देख रावण के मंत्री भयभीत हो यत्र-तत्र पलायन करने लगे; परन्तु रावण किञ्चित् भयभीत न हुआ।

सात दिन-रात यम और रावण एक-दूसरे पर अपने अस्त्र शस्त्र से प्रहार करते रहे। परन्तु जब यमदेव ने युद्ध में इतनी दृढ़ता प्रकट की तब वह मूर्च्छित हुआ तथा उसने युद्ध से अल्प विराम लिया। किन्तु पलायन नहीं किया। यमराज ने कहा— अब मैं रावण का संहार ही कर डालूँगा। तदनन्तर यमराज ने क्रोध से अमोघ कालदण्ड को उठा रावण को मारना चाहा।

यह देख ब्रह्माजी उनके समीप आकर बोले—वैवस्वत महाबाहो! इस दण्ड को चलाकर तुम इस राक्षस को मत मारो। क्योंकि मैं इसको वरदान दे चुका हूँ। अत: मेरा वचन मिथ्या मत करो। ब्रह्माजी के ये वचन सुनकर, धर्मात्मा यमराज ने कहा— आप मेरे स्वामी हैं।

अत: मैं इस दण्ड को इस पर न चलाऊँगा; परन्तु आप ही बतलावें कि इस युद्ध में क्या करूँ? यह तो अपाके वरदानसे अवध्य ही है। अत: अब उस राक्षस की दृष्टि से मैं अदृश्य हो रहा हूँ। यह कहकर यमराज अन्तर्ध्यान हो गये। इस प्रकार रावण ने यमराज पर विजय प्राप्त की।

रावण का यमराज को जीतकर आगे बढ़ना

तदनन्तर समर-विजयी रावण समुद्र में प्रवेश कर अपने मन्त्रियों सहित

रसातल में जहाँ दैत्य और नाग रहते हैं और जिसके रक्षक वरुणदेव हैं वहाँ चला गया। तब वासुकि नाग की भोगवतीपुरी में जाकर वह नागों को जीतकर उस मणिपुरी में गया, जहाँ निवातकवच दैत्य वास करते थे। वहाँ पहुँच रावण ने सबको युद्ध की उत्तेजना दी। अत: उन्होंने बड़े हर्ष से अपने विविध अस्त्रों द्वारा रावण से महासंग्राम किया और उभय में किसी ने भी अपनी पराजय न स्वीकार की।

तब लोकपितामह ब्रह्मजी वहाँ भी शीघ्र ही पहुँचे और उन्होंने उन्हें समझा कर मित्रता करा दी। निवात कवचों ने रावण का बड़ा सत्कार किया। वहाँ रहकर रावण ने निवातों से सौ प्रकार की मात्राएँ सीखीं। फिर वरुणदेव के नगर की खोज करता हुआ रावण कालकेय दैत्यों के 'अश्म' नामक नगर में पहुँचा। कालकेय दैत्य बड़े बलवान् थे। किन्तु रावण ने उन्हें भी परास्त कर दिया। इसी युद्ध में रावण ने अपने बहनोई विद्युज्जिह्व को तलवार के घाट उतार दिया।

उस युद्ध में रावण ने क्षणमात्र में चार सौ दैत्यों को मार डाला। तदनन्तर रावण को श्वेत मेघ के सदृश वरुण का दिव्य भवन दिखाई पड़ा। रावण ने वहीं सुरभी गौ भी देखी जिसके थन से सर्वदा दूध की धार बहा करती थी। उस परम अद्भुत सुरभि की प्रदक्षिणा कर रावण ने वरुण का वह श्रेष्ठ भवन देखा जो सैन्य-सुरक्षित और बड़ा ही भयंकर था। वहाँ पहुँच कर रावण ने वरुण के सेनापतियों को ताड़ित किया तथा युद्ध कर उन्हें मार डाला।

इतने ही में महात्मा वरुण के पुत्र-पौत्र क्रुद्ध हो रावण से युद्ध करने को आ पहुँचे। फिर तो देवासुर संग्राम की भाँति दोनों ओर से आकाश में घोर युद्ध आरम्भ हुआ। वरुण की सेना ने अपने अग्निवत् बाणों को चलाकर रावण को संग्राम से विमुख कर दिया। तब उसके महोदर आदि मंत्री वरुण के पुत्रों से युद्ध करने लगे और उन्हें परास्त-सा कर दिया।

यह देख, तब तक सचेष्ट हो रावण भी उन पर प्रहार करने लगा। फिर जलधारा के समान बाण बरसा कर वरुण के पुत्रों को मारने लगा। वरुण के पुत्र युद्ध में मूर्च्छित हो गये। सारथी उन्हें उठाकर तत्क्षण घर ले आया। रावण गर्जन करने लगा साथ ही उसने वरुण के सेवकों से कहा कि तुम मेरा संदेश वरुण से जाकर कहो।

इस पर वरुण के 'प्रहास' नामक मन्त्री ने कहा—इस समय सलिलेश्वर वरुणजी गन्धर्व गान श्रवण करने के लिये ब्रह्मलोक गये हुए हैं। उनके वीर कुमारों को तो तुम परास्त ही कर चुके हो। अब वरुण महाराज की अनुपस्थिति में तुम क्या व्यर्थ परिश्रम करते हो? यह सुन रावण ने भी वहाँ भी अपने विजय की घोषणा करा दी।

रावण का बहुत-सी कन्याओं और स्त्रियों का हरण करना तथा उनसे शापित होना

वहाँ से लौटते समय दुरात्मा रावण मार्ग के राजर्षियों, देवताओं और दानवों की कन्याएँ हरण करता हुआ लंका में आया। जिसकी भी दर्शनीय कन्या सुन्दरी स्त्री को मार्ग में देखता, उसके बन्धुजनों को मारकर उसे हरकर अपने विमान में बैठा लेता। इस प्रकार उसने कितनी ही राक्षसों, असुरों, मनुष्यों, पन्नगों और यक्षों की कन्यायें अपने विमान में बैठा लीं। वे बेचारी दुःखी हो शोकार्त्त भयोत्पन्न अग्नि ज्वाला सी अश्रुधारा बहाती थीं।

एक नहीं सैकड़ों ही कन्याएँ शोक सन्तप्त ऐसा ही अश्रु प्रवाहित कर रही थीं। उनके शोक और विलाप का वर्णन नहीं हो सकता। उस सब कन्याओं और स्त्रियों ने भी रावण को यही शाप दिया कि 'यह दुर्मति पर स्त्री के कारण ही मारा जावे।' उन पतिव्रताओं के मुख से यह वाक्य निकला ही था कि, आकाश में दुन्दुभी बज उठी और पुष्पों की वर्षा भी हुई। फिर तो उन स्त्रियों के शाप से रावण का पराक्रम नष्ट हो गया और उसकी कान्ति मन्द पड़ गई।

उन पतिव्रताओं के शाप को सुन रावण उदास हो गया। इस प्रकार वह उनके विलाप और शाप सुनता हुआ लंका में आया। निशाचरों ने बड़ा स्वागत किया। परन्तु वह ज्योंही वहाँ पहुँचा कि, त्योंही उसकी बहिन उसके समक्ष आकर सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ी। रावण ने बहिन को उठाया और परिसान्त्वना देकर पूछा कि—क्या बात है?

तब उस राक्षसी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसकी ओर देख कर कहा कि तुम्हारे चौदह सहस्त्र कालकेय दैत्यों को मारने के समय मेरे पति को भी शत्रु समझकर मार डाला। अतः तू मेरा नाम मात्र का ही भाई है। हे राजन् तेरे कारण तुझे वैधव्य भोगना पड़ेगा। तब रावण ने उसे उठाकर धैर्य बँधाया और कहा—बहिन युद्ध में मुझे अपने और पराये का कुछ ज्ञान न था, जिससे तेरा स्वामी मेरे हाथ से मारा गया।

अब तू अपने ऐश्वर्यवान् भ्राता खर के पास जाकर रह। तेरा वह भाई खर अबसे चौदह हजार राक्षसों का स्वामी होगा। वह तेरी सब आज्ञाओं का नित्य पालन करेगा। इसके पश्चात् खर चौदह हजार भयानक राक्षसों को साथ ले तत्क्षण ही दण्डकवन को प्रस्थित हुआ। और वहाँ पहुँच कर निष्कण्टक राज्य करने लगा शूर्पणखा भी वहीं चली गयी।

खर और दूषण को जनस्थान भेजना

इस प्रकार जब दशग्रीव उस खर की घोर सेना और बहिन को सान्त्वना देकर हर्षित और स्वस्थ हुआ, तब अपने अनुचरों को साथ लेकर, वह निकुम्भिला

नामक लंका के उस उपवन में चला कि, जहाँ उसका भयंकर रूपधारी पुत्र मेघनाद काले मृग का चर्म ओढ़े हुए और दण्ड-कमण्डल लिये यज्ञ मण्डप में शोभित हो रहा था।

वहाँ रावण ने अपनी बीसों भुजाएँ फैलाकर पुत्र को हृदय से लगाया और पूछा कि 'हे पुत्र! तू यह क्या कर रहा है?' तब पुरोहित शुक्राचार्य ने रावण से कहा—तुम्हारे पुत्र ने सविस्तार सात बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया है। जिसमें अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध तथा वैष्णव यज्ञ तो इसने पूर्ण कर लिये हैं।

तत्पश्चात् महेश्वर यज्ञ आरम्भ होने पर तुम्हारे पुत्र को साक्षात् महादेवजी से कई वर प्राप्त हुए हैं। एक इच्छानुसार चलने वाला दिव्यरथ भी इसने पाया है और तापसी नाम की माया भी प्राप्त हुई है जिसके द्वारा अन्धकार व्याप्त हो जाता है। यह माया जिसे प्राप्त होती है उसकी गति को देवता या असुर कोई भी नहीं जान पाते।

इसके अतिरिक्त इसे दो अक्षय तरकस, दुर्जेय धनुष तथा संग्राम में शत्रुघाती एक बड़ा ही बलाढ्य शस्त्र भी प्राप्त हुआ है। आज ही यज्ञ की समाप्ति में यह सब इसे प्राप्त हुआ है तथा हम दोनों आज ही आपसे मिलने के इच्छुक थे।' यह सुनकर रावण ने कहा—यह कार्य अच्छा नहीं हुआ। क्योंकि इसमें तो विविध उपचारों से तुमने मेरे शत्रु इन्द्रादि देवों की पूजा भी की होगी।

अच्छा, जो किया वह ठीक ही है। इसमें सन्देह नहीं कि, तुम्हें पुण्य की प्राप्ति होगी। यह कह रावण अपने पुत्र और विभीषण को साथ ले अपने भवन में आया। वहाँ उसने उन सब रोती हुई स्त्रियों को विमान से उतार दिया। तब उन सब स्त्रियों के प्रति रावण की आसक्ति जानकर धर्मात्मा विभीषण ने कहा—राजन्! आपके ये आचरण आपके सुयश, धन और कुल का नाश करने वाले हैं। हे राजन्! जिस प्रकार आपने इन स्त्रियों के बन्धुजनों को मार-पीटकर इनको हरा है, उसी प्रकार मधु दैत्य आपके मस्तक पर पाँव रखकर आपकी बहिन कुम्भनसी स्त्री को हर ले गया है।'

रावण ने पूछा—तुम सब क्या करते थे? विभीषण ने उत्तर दिया—आपका पुत्र यज्ञ में लगा था। मैं जल में निवास करता था और भैया कुम्भकर्ण नींद का आनन्दले रहे थे। इसी समय महाबली मधु ने आक्रमण किया और यहाँ के प्रधान-प्रधान राक्षस मन्त्रियों को मारकर वह कुम्भीनसी को हर ले गया। यद्यपि वह अन्त:पुर में भलीभाँति सुरक्षित थी। परन्तु आप अपनी दूषित बुद्धि के कारण, पाप प्रवृत्त हुए हैं।

इस कर्म का फल आपको इसी लोक में प्राप्त हो गया। इसे आप भली प्रकार

समझ लें। तब विभीषण का यह वचन सुनकर राक्षेन्द्र रावण क्रोध से जल उठा। उसके नेत्र लाल हो गये। उसने कहा—मेरा रथ शीघ्र जोतकर लाया जाय। शूर-वीर योद्धा युद्ध के लिये सन्नद्ध हों। भाई कुम्भकर्ण और मुख्य-मुख्य निशाचर नाना प्रकार के आयुधों से सज्जित हो वाहनों पर आरूढ़ हों। मैं मधु का आज ही वधकर देवलोक की यात्रा करूँगा।

राक्षसों की चार हजार अक्षौहिणी सेना युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गई। मेघनाद उस सेना का अग्रणी हुआ। रावण मध्य में और कुम्भकर्ण उसके पृष्ठ भाग में स्थित हुआ। धर्मात्मा विभीषण अपने धर्माचार में रत लंका में रह गये। शेष सभी निशाचर मधुपुरी की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर दशग्रीव ने अपनी बहित कुम्भीनसी को देखा, किन्तु मधु का दर्शन नहीं हुआ।

कुम्भीनसी ने अपने भाई रावण से अपने पति मधु का जीवनदान माँगा। जब रावण हर्षित हो अपनी मौसेरी बहिन से बोला—शीघ्र बतला तेरा पति कहाँ है? मैं उसे अपने साथ लेकर जय के लिये स्वर्ग-लोक को प्रस्थान करूँगा। यह बात सुनकर कुम्भीनसी महल में सोये हुए पति को उठाकर बोली आर्यपुत्र! मेरे भाई दशग्रीव आपको स्वर्गलोक विजय पाने की इच्छा से आपको सहायक बनाना चाहते हैं।

तब पत्नी की बात सुनकर मधु ने बहुत अच्छा कहते हुए उसे स्वीकार किया और राक्षसेन्द्र के पास जाकर धर्मानुसार उसका पूजन किया। वहाँ से प्रस्थान करने के पश्चात् कैलाशपर्वत पर पहुँचते हुए सन्ध्या हो गई। इससे वहीं एक शिखर पर उसने अपनी सेना का शिविर स्थापित किया।

रावण को नलकूबर का शाप

इस प्रकार संध्या समय कैलास पर्वत के शिखर पर अपनी सेना को स्थित कर रावण स्वयं ही विश्राम करने लगा। अन्य सब सैनिक भी निद्रा विभोर हो रहे। इतने में चन्द्रोदय हुआ। महापराक्रमी रावण उठकर पर्वत शिखर पर बैठकर चन्द्रमा की प्रभा और वृक्षों के कारण वर्द्धित कैलास पर्वत की शोभा देखने लगा, जहाँ से कुबेर के भवन में गान करती हुई अप्सराओं की मधुर ध्वनि भी श्रवणगोचर हो रही थी। संगीत की तान, विविध पुष्पों की शोभा, शीतल वायु का स्पर्श, पर्वत की रमणीयता, रजनी की मधुवसा और चन्द्रोदय उद्दीपन की इन समस्त सामग्रियों के कारण रावण कामासक्त हो गया।

इसी समय सब अप्सराओं में श्रेष्ठ चन्द्रमुखी रम्भा इसी मार्ग से आ निकलीं। उसके सुन्दर शरीर पर दिव्य वस्त्र और आभूषण शोभ रहे थे। अङ्गों दिव्य चन्दन का अनुलेप लगा था और केशपाश में पारिजात के पुष्प गुँथे हुए थे। वह दिव्य

पुष्पों से दिव्य शृङ्गार करके किसी उत्सव में सम्मिलित होने जा रही थी। वह अपनी अलौकिक कान्ति से दूसरी लक्ष्मी के ही सदृश ज्ञात होती थी। उस समय रावण तो काम वशीभूत था ही। अत: उसने उठकर तत्क्षण ही रम्भा का हाथ पकड़ लिया।

रम्भा बहुत ही लज्जित हो गई। तथापि रावण ने मुसकाकर कहा—वरारोहे! तुम कहाँ जा रही हो। तुम्हारी क्या इच्छा है। यह समय किसे अभ्युदय का है, जो तुम्हारा उपभोग करेगा। यह सुन्दर शिला है, इस पर बैठकर विश्राम करो। हे भीरु! इस जगत् में मुझसे बढ़कर कोई नहीं है। इन्द्र, जिष्णु, अश्विनीकुमार कोई भी मेरी समता नहीं कर सकते। अत: मुझे त्याग कर तेरा अन्य के पास जाना उचित नहीं। देख मैं त्रिलोकी का विधाता दशग्रीव हूँ और तुझसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ, अत: हे सुन्दरी! मेरा कहना मान ले।

रावण के ऐसे वचन सुन, रम्भा काँप उठी। उसने हाथ जोड़कर कहा—राक्षसराज! आप मुझ पर प्रसन्न होइये—मुझ पर कृपा कीजिये। आपको मुझसे ऐसी बात न कहनी चाहिये। क्योंकि आप मेरे महान् हैं, गुरु और पिता के तुल्य हैं। यदि मुझे और कोई ऐसा कहे तो आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये। मैं धर्मत: आपकी पुत्र-वधू हूँ, यह आपसे सत्य कह रही हूँ।

मैं इस समय आपके भाई कुबेर के पुत्र नलकूबर की सेवा में जा रही हूँ और इस कार्य में विघ्न न करें। मुझे त्यागकर सज्जनों के मार्ग पर चलिए! रावण ने कहा—रम्भे! तुम अपने को मेरी पुत्र-वधू क्यों बता रही हो? यह विचार तो उस स्त्री के लिए आता है जो किसी एक पुरुष की पत्नी हो। तुम्हारे देवलोक की तो स्थिति ही कुछ और है। अप्सराओं का कोई पति नहीं होता। ऐसा कह उस निशाचर ने बलपूर्वक रम्भा को उस शिला पर बैठा लिया और कामासक्त होकर उसका उपभोग किया।

पश्चात् उस अप्सरा को उसने छोड़ दिया। वह भय कम्पित हो नलकूबर के पास चली गई और हाथ जोड़कर उसके चरणों में गिर पड़ी। नलकूबर ने कहा—'कल्याणी! यह क्या बात है?तुम मेरे पैरों पर क्यों गिर रही हो? वह थर-थर काँप रही थी। पश्चात् उसने हाथ जोड़कर, जो कुछ हुआ था वह सब बात कही। तब उस पर बलात्कार की बात सुनकर वैश्रवण कुमार नलकूबर ने ध्यान लगाकर रावण की सब बर्बरता को ज्ञात कर लिया।

उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने तत्क्षण सविधि आचमन कर हाथ में जल ले राक्षसेन्द्र रावण को यह भयंकर शाप दिया कि—'हे भद्रे! स्त्री की इच्छा न रहने पर यदि काम पीड़ित होकर किसी स्त्री पर अत्याचार करेगा तो उसके सिर

के सात टुकड़े हो जायेंगे। नलकूबर के इस शाप को जब रावण ने सुना तब से उसने अकामा स्त्रियों पर बलात्कार करना त्याग दिया।

देवताओं और राक्षसों का युद्ध तथा सुमाली वध

इसके बाद कैलाश पर्वत को लाँघकर महातेजस्वी दशानन समस्त सेना सहित इन्द्रलोक में जा पहुँचा। रावण के आक्रमण से इन्द्र का सिंहासन डगमगा गया। फिर तो आदित्य, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र साध्यगण तथा उनचासों देवताओं सहित उससे युद्ध करने चले।

इधर स्वयं इन्द्र भयभीत हो विष्णुजी के पास पहुँचे। ब्रह्माजी के वरदान की सब बात कह उचित मार्ग से प्रस्थान की प्रार्थना की। उन्हें उससे युद्ध करने की भी प्रेरणा दी। विष्णुजी ने कहा—अवश्य ही ब्रह्माजी से वरदान पाकर रावण इस समय बड़ा ही दुर्जय है।

तुम उससे युद्ध कर कदापि विजयी नहीं हो सकते और मैं ही इस समय उससे युद्ध करूँगा। क्योंकि शत्रु का वध किये विना विष्णु कभी समरभूमि से नहीं आते। किन्तु रावण वरदान के बल से सुरक्षित है। इससे अभी मेरा अभीष्ट पूर्ण नहीं होगा। तथापि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि, मैं ही इस राक्षस की मृत्यु का कारण होऊँगा।

मैं ही इसे सपरिवार मारकर देवताओं को प्रसन्न करूँगा। परन्तु अभी समय की अपेक्षा है। तुम जाकर देवताओं सहित उससे निर्भय युद्ध करो। फिर तो ग्यारहों रुद्रादि सबने कवच धारण कर राक्षसों पर आक्रमण किया। प्रात:काल से ही भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। राक्षसों की अपार अक्षयवाहिनी को देख देवता व्यग्र हो गये। तदनन्तर विविध आयुधधारी देवताओं, राक्षसों और दानवों का घोर तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया।

रावण के शूरवीर और मन्त्रिगण युद्ध करने लगे। उन्होंने भीषण प्रहार कर देवताओं की सेना को मार गिराया। वे दशों दिशाओं में भाग चले। तब अपनी सेना को भागते देख अष्टम वसु, सवित्र, त्वष्टा औरपूषा तथा आदित्य देव ने बड़े साहस के साथ राक्षसों का सामना किया। युद्ध होने लगा। अब देवताओं की मार से राक्षसों की सेना त्रस्त होने लगी। यह देख राक्षस सुमाली बड़े क्रोध से उनसे युद्ध करने आया।

देवसेना नष्ट होने लगी। उसने इन देवताओं को भी मार भगाया। परन्तु सवित्र वसु फिर अपनी प्रचण्ड रथवाहिनी ले उस पर टूट पड़े। उन्होंने सुमाली के वेग को रोक दिया। सुमाली और वसु का रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। फिर तो महाबली वसु ने अपने महाबाण मारकर उसके सर्परथ को खण्ड-खण्ड कर गिरा दिया, फिर

अपनी प्रचण्ड गदा के प्रहार से उन्होंने उसे मार ही डाला तथा और भी जितने आये उन सबका उन्होंने गदा से मारकर संहार कर दिया।

मेघनाद का इन्द्र को बाँधकर लंका ले आना

अब देवताओं और राक्षसों का तुमुल युद्ध होने लगा। अन्धकार की उस घोर निविड़ता में इन्द्र, रावण और मेघनाद—यह ही तीन सावधान रह सके। देवताओं ने राक्षसों का घोर संहार कर दिया। यह देख रावण अत्यन्त ही कुपित हुआ। उसने अपने सारथी सूत से कहा—तुम शीघ्र ही मेरा रथ देवताओं की सेना के उस पार उदयाचल तक चलाओ।

सूत ने शत्रु देवताओं के मध्य से ही रथ को आगे बढ़ाया। इन्द्र ने देवताओं को उत्तेजना देकर कहा—क्या कहते हो, रावण को जीवित ही पकड़ लो। क्योंकि वरदान के प्रभाव से यह मारा तो जा नहीं सकता, अत: शीघ्रता करो। देवताओं से ऐसा कह इन्द्र दूसरी ओर घूमकर राक्षसों को मारने लगे। फिर तो रावण अबाध गति से उत्तर की ओर से देवसेना में प्रवेश कर गया।

इन्द्र दक्षिण की ओर राक्षसों पर प्रहार कर रहे थे।रावण सौ योजन तक प्रवेश कर गया। उसने अपने प्रचण्ड बाणों से देवताओं को त्रस्त कर दिया, इनमें में दानवों और राक्षसों ने बड़ा हाहाकार किया कि, हा! हम सब मारे गये, इससे यह निश्चय हो गया कि इन्द्र ने रावण को पकड़ लिया। फिर तो परम क्रोधातुर हो मेघनाद उस दारुण देवसेना पर टूट पड़ा। उसने कई उत्तम बाणों से इन्द्र के सारथि को मारकर घायल कर दिया।

तब इन्द्र रथ और सारथी को वहीं त्याग ऐरावत पर जा बैठे और मेघनाद को ढूँढ़ने लगे। पर वह तो अपनी माया द्वारा अन्तरिक्ष में अदृश्य हो रहा था। इन्द्र उसकी माया में फँस गये। उसने उन्हें बाँध लिया। यह देख देवता बड़े चिन्तित हुये। यद्यपि इन्द्र स्वयं अनेक प्रकार की माया जानते थे, तथापि इन्द्रजित् उन्हें बलपूर्वक पकड़े ले गया।

इससे देवता परम कुपित हो रावण को ऐसा मारने लगे कि, वह रण से विमुख हो गया। अब उसकी युद्धशक्ति सर्वथा ही क्षीण हो गयी। बाणों की घोर वर्षा से उसका शरीर जर्जरित हो गया। उसी समय अदृश्य रह मेघनाद अन्तरिक्ष से बोला—पिताजी! आप चिन्ता न करें, हमने इन्द्र को बाँध लिया है। अब युद्ध समाप्त हो गया, चलिए घर चलें। हमने देवताओं का मानमर्दन कर दिया। त्रिलोकपति इन्द्र को हमने बाँध लिया।

यह सुन देवताओं ने युद्ध स्थगित कर दिया और इन्द्र सहित वे वहाँ से

प्रस्थान कर दिये। रावण भी अपने पुत्र की बात सुन हर्षित हो वहाँ से चलकर मेघनाद के साथ हो उसकी प्रशंसा करने लगा और कहा—हे पुत्र! तूने मेरे कुल और वंश का गौरव बढ़ाया। आज तूने देवताओं सहित इन्द्र को जीत लिया। अच्छा, अब तू इन्द्र के रथ पर चढ़ और अपनी सेना सहित लंका को चल। मैं भी तेरे पीछे-पीछे अपने मन्त्रियों सहित हर्षित होता हुआ आता हूँ। इस प्रकार मेघनाद इन्द्र को पकड़कर लंका में ले आया।

ब्रह्मा का वर दे इन्द्र को छुड़ाना

इस प्रकार जब इन्द्र पकड़ कर लंका में लाये गये, तब सब देवता ब्रह्माजी को आगे कर रावण के पास गये। वहाँ पहुँच ब्रह्माजी ने आकाश में स्थित हो, पुत्र और भ्राताओं सहित बैठे हुए रावण से कहा—वत्स रावण! मैं तेरे पुत्र की शूर वीरता से सन्तुष्ट हूँ; क्योंकि वह तुमसे भी युद्ध में श्रेष्ठ हुआ है। इस प्रकार तुमने अपने पराक्रम से तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली।

अत: मैं तुम दोनों ही पर प्रसन्न हूँ। हे रावण! अबतेरा यह अतिबली पुत्र संसार में इन्द्रजीत नाम से विख्यात होगा। परन्तु हे महाबलाढ्य! अब तुम इन्द्र को छोड़ दो। इसके स्थान में बोलो कि, तुम देवतओं से क्या चाहते हो? इस महाविजयी इन्द्रजीत बोला—हे देव! यदि आप इन्द्र को छुड़ाना चाहते हैं, तो इसके बदले मुझे अमरत्व प्रदान कीजिए।

ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स! इस पृथ्वी का कोई भी प्राणी अमर नहीं हो सकता। मेघनाद ने कहा—अच्छा, अब मुझे यह वर दीजिए कि, मैं जब कभी शत्रु पर विजय पाने की इच्छा से संग्राम में उतरूँ और मन्त्रयुक्त अग्निदेव का पूजन करूँ, उस समय अग्नि से मुझे ऐसा दिव्य रथ प्राप्त हो जाया करे कि, जिस पर बैठकर युद्ध करते हुए मुझे कोई मार न सके। हाँ, यदि मैं जप और हवन को पूर्ण किये बिना ही युद्ध करूँ तब मेरी मृत्यु हो।

इस पर ब्रह्माजी ने कहा—एवमस्तु! ऐसा ही होगा। फिर तो यह वर पाकर मेघनाद ने इन्द्र को छोड़ दिया। सब देवता उनके साथ हो स्वर्ग को चले। उस समय इन्द्र दीन से हो रहे थे। उनका देवोचित तेज लुप्त सा हो गया था और वे चिन्तामग्न हो कुछ और ही सोच रहे थे।

तब उनकी मन: स्थिति को पहचानकर ब्रह्माजी ने कहा—देवराज! यह तुम्हारे पूर्व पापों का ही फल है। अब यह शोक क्या करते हो? तुम्हें स्मरण है, तुमने उस उत्तम गुण-सम्पन्न मेरी उत्पत्ति की हुई सुन्दरी अहल्या पर, जिसे मैंने धर्मात्मा महर्षि गौतम को अर्पण किया था—कैसा अत्याचार किया था, उस समय तुम्हें मेरा कुछ भी भय न रहा और तुमने उस निरीह मुनि पत्नी का बलात्कार किया।

मुनि ने उसे अदृश्य हो जाने का शाप दिया और तुम्हें भी शापित किया। तब अहल्या की प्रार्थना पर गौतम ने कहा कि, 'इक्ष्वाकुवंश में एक तेजस्वी महारथी का अवतार होने पर कि जिनका श्रीराम नाम होगा और जब वे तपोवन में आवेंगे तब उनके दर्शन से तू पुनः पवित्र हो मुझे प्राप्त होगी और तुम्हें कहा था कि 'तू शत्रु के हाथ में पड़ेगा।'

वही तुम्हारा पाप उदय हुआ है। अब तुम वैष्णव यज्ञ कर उस पाप से निवृत्त होओ। तुम्हारा पुत्र जयन्त युद्ध में मारा नहीं गया है। उसे उसका नाना अपने साथ लेकर समुद्र में प्रवेशकर गया है। इस समय वह उन्हीं के पास विद्यामान् है।' ब्रह्माजी के वचन सुनकर देवराज ने स्वर्ग में जाकर वैष्णवयज्ञ किया और पुनः स्वर्ग का राज्य पालन रने लगे।

हे राम! इन्द्रजीत इस प्रकार का बली था। अन्यों की तो बात ही क्या है उसने देवराज इन्द्र को जीत लिया था। अगस्त्य मुनि का वचन सुन राम लक्ष्मण बड़े आश्चर्यचकित हुये। तब वानरों सहित राम के पास बैठै विभीषण ने भी कहा—हे महर्षे! अवश्य ही यह आश्चर्य की बात है, जिसे बहुत दिन पश्चात् आज मैंने यह आपसे श्रवण किया। आपका यह कथन सर्वथा ही यथार्थ है।

रावण की पराजय का इतिहास

तदनन्तर महातेजस्वी राम विस्मित हो अगस्त्यजी को प्रणाम कर बोले— हे द्विजोत्तम! जब क्रूर रावण पृथ्वी-पर्यटन करता था, तब क्या इस पृथ्वी पर कोई वीर था ही नहीं अथवा पृथ्वी वीरों से शून्य थी? राजा या राजमात्र! क्या कोई भी ऐसा पुरुष नहीं था? तब राघव के ऐसे वचनों को सुनकर भगवान् अगस्त्य ऋषि हँसकर श्रीराम से ऐसा बोले, मानों ब्रह्माजी महादेवजी से बोलते हों।

उन्होंने कहा—पृथ्वीपते! इसी प्रकार विचरता हुआ रावण एक बार स्वर्ग तुल्य अग्निदेव के स्थान जब माहिष्मतीपुरी में जा पहुँचा, तब वहाँ का राजा अर्जुन, जो अग्नि के ही सदृश प्रभावशाली था, वह अपनी स्त्रियों सहित नर्मदा पर जल विहार करने गया था। तब वहाँ पहुँच कर रावण ने उसके मन्त्रियों से पूछकर उससे भेंट करने की इच्छा प्रकट की। मन्त्रियों ने कहा कि, इस समय महाराज राजधानी में नहीं हैं।

यह सुन उस पुरी को त्याग कर रावण हिमालय के समान उस विन्ध्याचल पर आया, जो मानों पृथ्वी को फोड़कर निकाल हुआ-सा अपने सहस्त्रशिखरों से शोभित था और जिसकी कन्दराओं में सिंहादिक अनेकों जन्तु वास करते थे। वह स्वर्गीय उन्नतशील था। हिमालय-सा उत्तुङ्ग और विशाल कन्दराओं से युक्त था। तब

उस विन्ध्यपर्वत को देखते-देखते रावण नर्मदा नहीं के तट पर जा पहुँचा, जो स्वच्छ पर्वतों पर बहती हुई पश्चिमोदधि गामिनी थी।

उसके तट पर सभी दर्शनीय प्राकृतिक दृश्य थे। वहाँ पहुँच रावण शीघ्र ही पुष्पक से उतर पड़ा और श्रेष्ठ नर्मदा नहीं में स्नान करने को उद्यत हुआ। उसके शुक, सारण और मारीच नामक मन्त्रिगण भी साथ हुए। तदनन्तर उसने अनायास ही अपने मन्त्रियों से कहा—'देखो, इस समय अपने तीक्ष्ण ताप से तप्त होने वाला सूर्य आकाश के मध्य में स्थित है, तथापि मुझे यहाँ देखकर चन्द्रवत् शीतल हो गया है।

मेरे ही भय से यह वायु भी नर्मदा के जल से शीतल, सुगन्धित और श्रमनाशक होकर बड़ी सावधानी से प्रवाहित हो रहा है। तुम लोग भी इस महानदी में स्नान कर पापों से मुक्त हो जाओ। मैं भी इसके स्वच्छ पुलिन पर महादेवजी को पुष्पाञ्जलि अर्पित करूंगा।' रावण के ऐसा कहने पर उसके सब मन्त्रियों ने नर्मदा में प्रवेश कर स्नान किया और पुन: रावण के लिये पुष्पों का पर्वत-सा लगा दिया।

रावण स्नान करने नदी में प्रविष्ट हुआ। फिर स्नान कर बाहर आ सविधि मन्त्रों का जाप करते हुए जब हाथ जोड़कर चला तो सब राक्षस भी उसके पीछे-पीछे चले। राक्षसेन्द्र रावण जिधर जाता उधर ही अपने साथ एक सुवर्णमय शिवलिङ्ग ले जाता। उसने वहाँ भी बालुका में एक लिङ्ग स्थापित किया। उसकी सविधि पूजा की। फिर वह उसके समक्ष हाथ उटाकर भक्तिपूर्वक नाचने लगा और गाने लगा।

सहस्रार्जुन द्वारा रावण का बाँधा जाना

राक्षसेन्द्र रावण नर्मदा के जिस तट पर शिवजी की पुष्पों से पूजा कर रहा था, वहाँ से कुछ ही दूर हटकर माहिष्मती नगरी का राजा महाविजयी अर्जुन अपनी बहुत-सी रानियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहा था। उसकी सहस्त्र भुजाएँ थीं, जिनके परीक्षणार्थ नर्मदा के घाट के जल को रोक रहा था। तब उसकी भुजाओं से अवरुद्ध नर्मदा का जल समुद्र के द्वारा के समान उमँड़कर जिधर रावण बैठा पूजा कर रहा था उस ओर विपरीत गति से प्रवाहित होने लगा।

इससे रावण द्वारा शिव को समर्पित समस्त पुष्प प्रवाहित हो गये। रावण ने देखा, नर्मदा का जल समुद्र के द्वार के समान पश्चिम की ओर से बढ़कर पूर्व की ओर प्रवाहित हो रहा है। इसकी पूजा भी अभी समाप्त न हो पायी थी, कि आधे में ही जल की बाढ़ के कारण उसे अपनी पूजा समाप्त कर देनी पड़ी। वह नर्मदा की ओर घूमकर देखने लगा।

देखा तो जल की धारा पश्चिम से पूर्व की ओर अग्रसर है और अल्प समय में ही नदी शान्तपथ से पूर्वत् प्रवाहित होने लगी। यह देख रावण मुख से कुछ न

बोला, किन्तु अपने दाहिने हाथ की अँगुली से शुक और सारण को नदी की बाढ़ का कारण ज्ञात करने के लिए संकेत किया।

वे दोनों भाई पश्चिम की ओर आकाश में उड़े। उड़ते-उड़ते जब आधा योजन निकल गये तब देखा कि, एक पुरुष स्त्रियों के साथ जलविहार कर रहा है, तो साल वृक्ष के समान परमोन्नत है, जिसके केश खुले हुए हैं और नेत्र मदात्य से लाल हो रहे हैं और वह अति मद्यपान से मतवाला हो रहा है तथा जैसे अपने सहस्त्रों चरणों से सुमेरु पर्वत पृथ्वी को दबाये हुए हो, ऐसे ही अर्जुन की सहस्त्रों भुजाओं से नदी का जल अवरुद्ध है।

वह बलवान् सहस्त्रों श्रेष्ठ स्त्रियों से समावृत्त है। शुक और सारण उस अद्भुत दृश्य को देखकर शीघ्र ही लौटे और रावणसे सब देखा हुआ वृत्तान्त का। शुक और सारण के इस प्रकार कहने पर रावण बोल उठा—'वही अर्जुन है।' तदनन्तर रावण अपने मन्त्रियों सहित युद्ध की लालसा से उधर की ओर चला और शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचा, जहाँ अर्जुन जलक्रीड़ा कर रहा था।

वह अञ्जन के समान काला और बड़ा ही बलवान् था। वहाँ पहुँच कर उसने अर्जुन को स्त्रियों से आवृत्त जल विहार करते हुए वैसी देखा जैसे बहुत-सी हथिनियों के साथ कोई गजेन्द्र जल विहार करता हो। राजा अर्जुन को देखते ही राक्षसराज रावण के नेत्र क्रोध से ला हो गये। उसने अर्जुन के मन्त्रियों से गम्भीर वाणी में यह क़हा—'मन्त्रियों! तुम लोग दैत्यराज अर्जुन से कहो कि, तुमसे युद्ध करने के लिए रावण आया है।'

मन्त्रियों ने कहा—'इस समय महाराज स्त्रियों के मध्य में हैं और ऐसी स्थिति में आप युद्ध करना चाहते हैं? आज के दिन क्षमा कीजिए और रात भर ठहर जाइये। कल अर्जुन से मिलकर युद्ध कर लीजियेगा। और यदि आपको युद्ध करने की बड़ी शीघ्रता हो तो हम सबको संग्राम में मारकर यमराज के पास पहुँचा जाइए।' यह सुन रावण के मन्त्रियों ने अर्जुन के कितने मन्त्रियों को मार डाला और कितने ही को भूखे होने के कारण खा डाला।

उभय मन्त्रियों के युद्ध से नर्मदा तट पर बड़ा कोलाहल मच गया। अर्जुन के पक्ष के योद्धा रावण के पक्ष वालों पर और रावण के पक्ष वाले वीर तथा मंत्रिगण अर्जुन के पक्ष वालों पर बाण, तोमर, भाले, त्रिशूल और वज्र आदिक अस्त्र शस्त्रों का प्रहार करने लगे। जब यह समाचार वीर राजा अर्जुन को मिला तो वह अपने साथ क्रीड़ित स्त्रियों से बोला—'तुम सब किञ्चित् भी भयभीत न होना।'

ऐसा कह उन सबको जल से बाहर निकाला और क्रुद्ध विकृत नेत्रों से अपनी

गदा ले तीव्रता से राक्षसों पर टूट पड़ा। परन्तु तत्क्षण ही विन्ध्य के सदृश अचल प्रहस्त हाथ में मूसल ले उसके समक्ष जा पहुँचा। उसने उस लौह जटित मूसल से अर्जुन पर प्रहार किया। फिर यम-सी भीषण गर्जना की। किन्तु अस्त्रकुशल अर्जुन ने तनिक भी चिन्ता न की और अपनी गदा से उसके प्रहार को व्यर्थ कर दिया।

उस गदाघातों से प्रहस्त धाराशायी हुआ। प्रहस्त को धराशायी हुआ देख मारीच, शुक, सारण महोदर और धूम्राक्ष युद्ध क्षेत्र से पलायन कर गये। यह देख स्वयं रावण ने वीर श्रेष्ठ अर्जुन पर आक्रमण किया। सहस्त्र भुजाधारी नरनाथ और बीज भुजाधारी निशाचरनाथ को रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। दोनों ही सिंह के समान बली थे।

भयानक गर्जना कर रुद्र और यमराज के समान कुपित हो एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। उस समय उन गदा-प्रहारों को वे दोनों उसी प्रकार सहन करने लगे, जैसे पर्वतों ने भयंकर वज्राघातों को सहन कर लिया था। विद्युत् की घोर गर्जन से जैसे दिशाएँ गूँज उठती हैं, उसी प्रकार उनकी गदाओं के प्रहार से सभी दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही थीं।

इसी क्षण अर्जुन ने कुपित होकर रावण के विशाल वक्ष:स्थल पर पूर्ण शक्ति से गदा का प्रहार किया। परन्तु रावण तो वर के प्रभाव से सुरक्षित था, अत: उसके वक्ष:स्थल से टकराकर उस गदा के दो खण्ड हो गये। तथापि अर्जुन के गदा प्रहार से रावण एक धनुष पीछे हट गया और रोता हुआ पृथ्वी पर बैठ गया। रावण को व्याकुल देखकर अर्जुन ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और अपने सहस्त्र करों के द्वारा उसे जबरन से बाँध दिया।

रावण के बँध जाने पर सिद्ध, चारण और देवताओं ने 'धन्य-धन्य' कहा, अर्जुन के ऊपर पुष्पों की वर्षा की। फिर तो जैसे सहस्त्र लोचन इन्द्र राजा बलि को जीत अमरावती में आये थे, वैसे ही अर्जुन भी रावण को बाँधे हुए अपनी माहिष्मतीपुरी में आया।

पुलस्त्यजी का रावण को मुक्त कराना तथा रावण का लज्जित हो लंका को लौट आना

रावण को पकड़ लेना वायु को पकड़ लेने के ही समान था। स्वर्ग में वार्तालाप करते हुए पुलस्त्यजी ने जब देवताओं के मुख से यह बात सुनी तो वे पुत्रस्नेह वश थर्रा उठे और वायु गति से माहिष्मती नरेश से भेंट करने आये। राजा के द्वारपालों और मन्त्रियों ने उनके आगमन की सूचना राजा को दी। तब तपस्वी

पुलस्त्य का आगमन सुन वे हाथ जोड़े हुए उनकी आगवानी को आए। राजपुरोहित अर्घ्य और मधुपर्क सामग्री ले आगे चले।

राजा ने कहा—हे मुने! यह राज्य, ये स्त्री-पुत्र और हम सब लोग आपके ही हैं। आज्ञा दीजिए, अम आपकी क्या सेवा करें?' यह सुनकर, पुलस्त्य मुनि ने धर्म, अग्नि और पुत्रों का कुशलमंगल पूछा। साथ ही उन्होंने अर्जुन से कहा--'हे नरेन्द्र! तुममें अतुलित बल है। तभी तो तुम दशग्रीव को जीत लिया है। अहो! जिसके भय सेसागर और पवन भी मौन होकर आज्ञा पाने की प्रतीक्षा किया करते हैं! हे वत्स! अब मैं तुमसे यही माँगता हूँ कि, मेरा वचन मानकर, तुम रावण को मुक्त कर दो।'

अर्जुन के पुलस्त्यजी की आज्ञा शिरोधार्य की और बिना किसी आपत्ति के ही सहर्ष राक्षसेन्द्र रावण को मुक्त कर दिया। फिर अग्नि के समक्ष उपस्थित हो अपने मन को शुद्ध कर इसके साथ मैत्री भी कर ली। फिर ब्रह्माजी केपुत्र पुलस्त्यजी को प्रणाम कर राजा अर्जुन अपने भवन नें प्रविष्ट हुआ। पुलस्त्य ने भी रावण को विदा किया। यद्यपि अर्जुन ने रावण का स्वागत किया, तथापि पराजित हो जाने के कारण वह लज्जित होता हुआ लंका को चला गया। ब्रह्मपुत्र पुलस्त्यजी भी रावण को छुड़ा ब्रह्मलोक को प्रस्थित हुए।

जब रावण किष्किन्धा गया था

अर्जुन द्वारा मुक्त किया गया राक्षसाधिप रावण फिर सब पृथ्वी का परिभ्रमण करने लगा। जहाँ-कहीं भी उसे अधिक बलवान् मनुष्य या राक्षसों का होना सुनाई पड़ता, वह वहीं दौड़कर जाता और उसे युद्ध के लिये ललकारता। एक दिन वह बालिपालित किष्किन्धापुरी में पहुँचा और उसने सुवर्णमालाधारी बालि को युद्ध के लिये बुलाया।

तब युद्ध की इच्छा से आये हुए रावण से बालि के मन्त्री, तारा, तारा के पिता सुषेण, अंगद और सुग्रीव ने कहा—राक्षसेन्द्र! इस समय बालि तो बाहर गये हुए हैं, जो आपके जोड़ के हैं। अभी अल्प काल के लिये आप ठहरिये। बालि चारों समुद्रों पर सन्ध्या कर, अब आना ही चाहते हैं। तब-तक शंख के समान श्वेत हड्डियों के इस ढेर को देख लो। ये उनकी हड्डियाँ हैं, जो वानरराज बालि से युद्ध करने की इच्छा से आ चुके हैं।

हे रावण! यदि तुमने अमृतरस भी पान किया होगा, तो भी बालि के समक्ष जाने पर तुम फिर जीवित न रह सकोगे। हे विश्रवा पुत्र! आज तुम इस संसार को देख लो और अल्प क्षणों तक ठहरो, फिर तो तुम्हारा जीवन दुर्लभ हो जायेगा और यदि

तुम्हें मरने की शीघ्रता हो तो दक्षिण समुद्र पर चले जाओ। वहीं समुद्र के तट पर तुम्हारी बालि से भेंट हो जायेगी।

बालि पृथ्वी पर स्थित अग्नि के समान भभकता है। तब उनकी इन बातों को सुनकर उनका तिरस्कार करता हुआ रावण पुष्पक पर बैठा दक्षिण समुद्र की ओर गया। वहाँ पहुँच उसने सुवर्णगिरि के समान उन्नत बालि को सन्ध्योपासन करते हुए देखा। काजल के समान काले रंग का रावण विमान से उतर पड़ा और बालि को पकड़ने के लिये पैरों की आहट न करते हुये तत्क्षण ही उसकी ओर चल दिया। परन्तु दैवयोग से बालि ने उसे देख लिया।

किन्तु उसके दुष्ट अभिप्राय को जानकर भी वह किञ्चित् व्यग्र न हुआ और न उसकी ओर कुछ ध्यान ही दिया। उसने निश्चय कर लिया कि, यह मुझे पकड़ना चाहता है, परन्तु इस दुष्ट को अपने पार्श्व में दबाकर अन्य तीन समुद्रों पर जाऊँगा। इसके हाथ, वस्त्र और पैर लटकते रहेंगे जिससे गरुड़ के पंजे में फँसे हुए सर्प के समान लोग इसे मेरे पार्श्व में पड़ा देखेंगे।'

यह सोचकर बालि मौन ही रहा और वेद मन्त्रों का जाप करता रहा। जब रावण ने समझा कि अब तो मैं हाथ बढ़ाकर इसे पकड़ सकता हूँ, उसी समय बालि ने दूसरी ओर मुँह किये ही उसे इस प्रकार पकड़ लिया, जैसे गरुड़ सर्प को दबोच लेता है। फिर तो वह उसे बगल में दाबे हुए बड़े वेग से आकाश में उड़ा। रावण उसे बारबार नोचता था। तब भी वायु जिस प्रकार बादल को उड़ा ले जाता है उसी प्रकार बालि उसे बगल में दबाये चलता था।

इस प्रकार रावण के परास्त हो जाने पर उसे मन्त्री उसे बालि से मुक्त करने के लिये रावण के पीछे-पीछे दौड़ते रहे। परन्तु बालि तक वे पहुँच ही नहीं पाते थे। इससे वे श्रमित होकर बैठ गये। इतने में महावेगवान् वानरराज बालि रावण को लिये हुए पश्चिम समुद्र पर पहुँचा, वहाँ स्नान, संध्या और जप करके वह उत्तर समुद्र पर आया।

वहाँ भी उसने संध्या की और पुनः पूर्व समुद्र पर आया। वहाँ भी सन्ध्योपासन करके उसे पार्श्व में दबाये किष्किन्धा लौट आया। किष्किन्धा के उपवन में पहुँचकर उसने रावण को अपनी काँख से छोड़ दिया और बार-बार हँसकर पूछा—कहिए, आप कहाँ से आ रहे हैं? तब काँख में इतनी देर दबे रहने के कारण रावण भी श्रमित हो गया था जिससे उसके नेत्र व्याकुल हो रहे थे।

राक्षसेन्द्र ने विस्मित हो बालि से कहा—वानरराज! तुम तो साक्षात् इन्द्र के समान हो। मैं राक्षसेन्द्र रावण हूँ, युद्ध करने की इच्छा से यहाँ आया था। परन्तु आज

तुम्हारे हाथ से पकड़ लिया गया। अहो! तुम्हारा बल, पराक्रम और गाम्भीर्य आश्चर्योत्पादक है। तुमने मुझे पशु के समान पकड़ चारों समुद्र पर परिभ्रमण किया है। हे वीर! तुम्हारे अतिरिक्त ऐसा कोई भी वीर नहीं है। जो मुझे लिये इस प्रकार वहन करे।

ऐसे गति तो मन, वायु और गरुड़ इन तीन की ही है। अथवा निःसन्देह चौथे आप ऐसे वेगशाली हैं। हे वानरराज! मैंने आपका बल देख लिया। अब मैं अग्नि को साक्षी बनाकर आपके साथ सर्वदा के लिए मित्रता करता हूँ। स्त्री, पुत्र, नगर, राज्य, भोग, वस्त्र और भोजन—ये सभी वस्तुएँ हम दोनों की सम्मिलित रहेंगी।' फिर तो वानरराज और राक्षसराज दोनों ने अग्नि प्रज्वलित कर परस्पर बन्धु-स्नेह की स्थापना की और एक ने दूसरे का आलिङ्गन किया।

फिर दोनों हर्षित हो एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए किष्किन्धा में गये। रावण एक मास तक किष्किन्धा में सुग्रीव के समान रहा। फिर त्रैलोक्यनाशक रावण के मंत्री वहाँ आ उसे लिवा ले गये।

हे प्रभो! यह एक प्राचीन घटना का वृत्तान्त है, जिसमें बालि ने रावण को नत किया और पुनः अग्नि-सान्निध्य में उससे बन्धुत्व स्थापित किया था। हे राम! बालि में अनुपम बल था, किन्तु अग्नि जिस प्रकार पतङ्गे को दग्धकर देती है, उसी प्रकार आपने उस बालि को एक ही बाण से मार डाला।

अन्त में अगस्त्यजी बोले—हे राम! उस लोककण्टक रावण की यह उत्पत्ति कथा है जिसने इन्द्र तथा जयन्त को भी युद्ध में परास्त कर दिया था।

अतः हे पुत्र! अपना माहेश्वर यज्ञ तुम अब सम्पन्न करने के लिए उद्यत हो जाओ और सदाशिव को प्रसन्न करो।

॥ इस प्रकार रावणसंहितान्तर्गत रावण जीवन वृत्तान्त प्रथम परिच्छेद सरल, सुबोध हिन्दी भाषा में मैथिल आचार्य शिवकान्त झा द्वारा सुसम्पन्नता को प्राप्त हुआ॥१॥

॥ शुभमिति ॥

❑❑❑

द्वितीय परिच्छेद

रावण सदाशिव सम्वादात्मक

तन्त्र-मन्त्र साधना

त्रेता युग में कैलास पर्वत के शिखर पर, जो कि अनेक रत्नों से शोभित, अनेक वृक्षों एवं लताओं से व्याप्त था। जिस पर भाँति-भाँति के पक्षी मधुर ध्वनियों में किल्लोल कर रहे थे।

जहाँ पर सब ऋतुएँ अनेकानेक फूलों एवं फलों से सुन्दर ज्ञात होती थीं और शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चल रहा था।

जहाँ पर वृक्षों की अटल एवं सुखद छाया में अप्सराओं की सुन्दर संगीत ध्ववनि होती थीं और कोकिकालाओं का समूह बनों से प्रविष्ट होकर कुहुकता था, एवं ऋतुराज बसन्त अपने सेवकों के साथ सदा निवास करते थे।

जिस कैलास पर्वत के शिखर पर सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा अपने गणों सहित गणेशजी और स्वामिकार्तिकेय जी सदा निवास करते थे। उसी रम्य कैलास शिखर के ऊपर चराचर जगत के श्रीशंकर जी मौन धारण कर निवास करते थे।

जो सदा कल्याण करने वाले, आनन्द मूर्ति एवं दयारूपी अमृत के सागर हैं। जिनका वर्ण कर्पूर एवं कुन्द-पुष्प की भाँति उज्ज्वल और जो पवित्र सत्त्वगुणमय तथा व्यापक हैं।

जिनके दिशायें ही वस्त्र हैं, जो दीन दुखियों के स्वामी योगियों में सर्वश्रेष्ठ तथा योगियों को अत्यन्त प्रिय हैं। जिनकी जटायें गंगाजी की धारा से सदा भीगी रहती हैं।

जो विभूति से भूषित, शान्ति स्वरूप, सर्पों की माला एवं मुण्डों की माला धारण किये हैं। जिनके तीन नेत्र हैं, जो तीनों लोकों के स्वामी तथा त्रिशूलधारी हैं।

जो शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले, ज्ञानरूप, मुक्ति प्रदान करने वाले, आदि अन्त रहित, कल्पनातीत तथा विशेष रहित निरंजन हैं।

जो सबका हित करने वाला, देवताओं के भी देवता तथा निरामय अर्थात् जो रोग रहित हैं। जिनका ललाट अर्धचन्द्र द्वारा देदीप्यमान है और जो पाँच मुख वाले तथा सुन्दर भूषणों से भूषित हैं!

इस प्रकार प्रसन्न मुख शंकरजी को देखकर रावण ने संसार के हित की कामना से उनसे पूछा।